# बालू की दीवार

( कहानी संग्रह )

# बालू की दीवार

( कहानी सग्रह )



लेखक :

महेश चन्द्र 'सरल'

सरल गृह प्रकाशन

प्रकाशक –
सरल प्रकाशन गृह,
हरदोई ( उ० प्र० )

द्वितीयावृत्ति - अपरैल १९५७

---



---

मूल्य – २॥)

---

मुद्रक –
शौकत अली
रफ़ीक़ आलम प्रेस,
हरदोई

प्रस्तुत पुस्तक में मेरी ग्यारह कहानियाँ संग्रहीत हैं, जो विभिन्न अवसरों पर भिन्न-भिन्न विषयों को लेकर लिखी गई हैं और प्रतिनिधि पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित हो चुकी हैं। कहानी मानव-जीवन के किसी एक अंग का स्पर्श-मात्र है, इसी तथ्य के आधार पर इन कहानियों में समाज के कुछ चित्र खींचे गये हैं। प्रत्येक कहानी की अपनी कहानी है, जिसके पात्र, कथा-वस्तु, चरित्र-चित्रण और घटनायें कल्पना और यथार्थ के सम्मिश्रण से रची गई हैं। सबकी पृष्ठ-भूमि किसी न किसी मनोवैज्ञानिक विश्लेषण का एक अंश है।

संक्षेप में संग्रह आपके हाथ में है। जीवन की गहराई में मानवीय दुर्बलताओं के साथ उतरकर वास्तविकता को खोजिये। मेरा आपसे यही अनुरोध है।

# कृतज्ञता

'बालू की दीवार' का द्वितीय संस्करण आपके हाथ में है। इसके लिये आभार।

मनुष्य अपनी कहानी सदैव चाव से पढ़ेगा।

सहयोग के लिये कृतज्ञ हूँ और भविष्य में भी रहूँगा।

होलिकोत्सव }
१६५७ }

लेखक

'बालू की दीवार' की कौ

# सूची

# नीरजा

कवि आनन्द खोया-सा, विस्मृत और अर्द्धनिद्रित, राज-पथ पर अपनी कविता की मधुर-स्वर-लहरी बिखेरता, हल्की पद्‌चाप करता जा रहा था। संध्या हो आई थी और पथ के दोनों ओर के सुरम्य उद्यानों से बहु-संख्यक पुष्प हल्के समीर के साथ वायुमण्डल को सुवासित कर रहे थे। आनन्द एक ओर खड़ा होकर कुछ सोचने लगा। पथ निर्जन था। वह एक ओर बैठकर कोई नवीन भाव आ जाने से उसे ही लिखने लगा। इस प्रकार वह कब तक बैठा रहा, इसका ध्यान उसे नहीं रहा। जब उसने अपने को चारों ओर से राज्य के सैनिकों से घिरा और सम्मुख एक सौन्दर्य की प्रतिमा को अपनी ओर निहारते हुए पाया, तब उसने कलम रोक ली।

उसने विक्षिप्तों का-सा भाव बनाकर प्रतिमा की ओर देखकर पूछा—'आप क्या चाहती हैं ?'

'यही तो मुझे तुमसे पूछना है ? तुम इस पथ पर कैसे आ गये ?'—प्रतिमा ने अधिकृत स्वर में कहा—'तुम राजाज्ञा से राजबन्दी हो।'

'कवि को किसने बन्दी कर पाया है देवि! आप भूल रही हैं। अपने मार्ग पर जाइये।'

'किन्तु यह राज-पथ है। इस पर आनेवाले नागरिकों को दण्ड मिलता है। जन-पथ है तुम लोगों के लिये। विशेष आज्ञा बिना यहाँ आना अपराध है।'

'अपराध  अपराध तो प्रकृति की ओर लालसा भरी दृष्टि से देखने में भी है, किन्तु वह ईश्वरीय नियम के अन्तर्गत है अच्छा, तो मैं चला।'—कहकर वह अपनी कविता गुनगुनाने लगा।

उस प्रतिमा ने आज्ञा दी—'तुम जा नहीं सकते, ठहरो।'

आनन्द रुक गया। दो सैनिक पकड़कर उसे बन्दी बनाने लगे। उसने आपत्ति नहीं की। उसके दोनों हाथ बाँध दिये गये।

फिर आज्ञा हुई—'चलो, कल राज-दरबार में तुम्हारे अपराध का दण्ड सुनाया जायगा।'

आनन्द ने पूछा—'क्या मै अपने बन्दी करनेवाले को जान सकता हूँ ?'

'मैं हूँ राजकुमारी नीरजा।'

आनन्द जैसे प्रफुल्लित हो उठा। अपने शरीर का सारा पुलक बिखराते हुए बोला—'आप भी कविता करती हैं क्या ?'

'कवि झूठे होते हैं बन्दी, मिथ्या प्रलाप में अपना समय खोनेवाले। मुझे उनसे चिढ़ है।'

आनन्द जैसे धृष्टता करते हुए कह उठा—'कविता क्या है, यह आपको समझाना होगा। साहित्य के माधुर्य से विमुख हो कर क्या आप जीवन में रस का संचार कर सकती हैं ?'

'तुम बन्दी हो नागरिक, अपनी परिधि से बाहर मत जाओ।' राजकुमारी ने कड़ककर कहा—'और तुम्हारा नाम ?'

'आनन्द'—उसने उत्तर दिया—'मेरी वाणी को आपने बन्दी नहीं बनाया है राजकुमारी। मेरे शरीर को और कसकर बाँध लेने पर भी वह उसी प्रकार रहेगी।'

राजकुमारी नीरजा उसके और निकट आकर उसके मुख पर गहरी दृष्टि डालती हुई जैसे अपने समस्त आकर्षण की प्रतिभा उसके हृदय पर उतारती गई, फिर कहने लगी—'कारागार में जब बिना अन्न-जल के पड़े रहोगे तब समझोगे कविता क्या होती है ? साहित्य की विवेचना वहीं करना आनन्द !'

आनन्द ने कहा—'सो ही होगा देवि ! उसी में बन्द रहकर तो काव्य-धारा बहेगी। यहाँ बाहर रहकर और सभी कुछ देखकर मन अस्थिर हो उठता है। कवि उसकी चंचलता को ही तो बाँधकर रखना चाहता है। आप तो कभी-कभी देखने आया करेंगी, और बस........और मुझे चाहिये ही क्या ? खाना तो मैंने आज दो दिन से नहीं खाया है, किन्तु मैं स्वच्छन्द हूँ। मेरा स्वर बन्दी का स्वर नहीं है। उस में भय नहीं है देवि ! मेरी कविता मेरे साथ है।'

'तुम्हें लिखने को कागज-कलम नहीं मिलेगा, तब किस पर इन अक्षरों को रँगोगे ?'

'अपने हृदय-पट पर देवि ! पहले जब कागज नहीं था, तो लिखता ही कौन था ? सब कुछ कण्ठ में समाया रहता था। काव्य पर काव्य सुनाये जाते थे। मेरा मार्ग रोकोगी, क्यों राजकुमारी ? मेरी कोमल भावनाओं को ठेस पहुंचाने का प्रयत्न करोगी ? नारी तो स्वयं कोमल है, दयालु है। फिर आपकी यह कठोर........?'

'तुम उद्दण्ड हो आनन्द ! भय क्या है, यह तुम्हें बताना होगा। दया के पात्र तुम नहीं हो।'

आनन्द ने मुस्कराते हुए कहा—'यह सब आप समझेंगी राजकुमारी, समय आ गया है। कविता की एक धारा तब

आपके हृदय में महासागर-सी बनकर आलोड़ित होने लगेगी तब तूफ़ान आयेगा। मन के भीतर ही जैसे महाप्रलय होने लगेगी। और तब आप 'शान्ति-शान्ति' चिल्लाती हुई तृप्ति बटोरने के लिये कविता की पंक्तियों को खोजती फिरेंगी। उस दिन आप समझेंगी, कवि कौन हो सकता है? वह तो अपना सर्वस्व गवाँ चुका है। और जिसके रोम-रोम से महाज्वाल फूट-फूट कर निकल चुका है, जो जलकर भस्म हो चुका है राजकुमारी, उसके चरणों में नत-मस्तक होना तब।'

राजकुमारी नीरजा उसके व्यंग्य से आहत होकर भी अपना रोष प्रकट न कर बोली—'तुम पागल तो नहीं हो गये हो बन्दी?'

'पागल तो हूँ ही देवी नीरजा! आप क्या पागल नहीं हैं? सारा विश्व पागल है ह:-ह:'-कहकर वह उच्च अट्टहास करता हुआ चलने लगा। सैनिक उसके स्वभाव की विचित्रता से चकित थे, किन्तु राजकुमारी उससे बोलती चल रही थी, इससे वे चुपचाप चले आ रहे थे। वह पकड़े जाने में भी प्रसन्न था।

आनन्द बड़ी देर तक हँसता रहा। उसकी हँसी की प्रतिध्वनि दूर से टकराकर लौटती रही। उसे पसीना आ गया। उसका मुख लाल हो गया, किन्तु वह चुप नहीं हुआ। साँस की गति के बीच बोला—'आप डरें न राजकुमारी। मुझसा दुर्बल व्यक्ति संसार में आपको और कौन मिलेगा, जो एक पुरुष होकर भी एक स्त्री की आज्ञा का उल्लंघन नहीं कर सका? अपना जीवन तक उसके हाथों में सौंप बैठा।'

नीरजा ने अंगुली के संकेत से सामने की ऊँची दीवार दिखाते हुए कहा—'अब व्यर्थ की बातें मत करो आनन्द। उस दीवार के भीतर एक कोठरी में बन्द होकर तुम्हें रहना होगा। बचोगे

तो तुम नहीं दरबार मे भी बहकी बहकी बाते करोगे, तो महाराज तुम्हे फासी का ही दण्ड देंगे .'

आनन्द ने मानो कुछ सुना ही नहीं। अपनी बात कहता रहा—'जीवन स्वयं एक कविता है राजकुमारी, इसे आपको समझना ही होगा। यौवन की मुस्कराहट आपकी पलकों से झाँक रही है। अरुणिमा आपके कपोलों पर छा गयी है। आपके हृदय में रह-रहकर स्पन्दन होता है, उसका आभास मै स्पष्ट पा रहा हूं देवी नीरजा। यही सब तो कविता है। जो सत्य है, और जो सुन्दर है। वही सब मैं कह रहा हूँ। निरी कल्पना की थोथी उड़ान से दूर आपको मैं वही सब सुनाऊँगा, जो कहने को तो सुनहला स्वप्न है राजकुमारी; किन्तु यथार्थ से परिपूर्ण।'

राजकुमारी जितना ही उसकी बातों की उपेक्षा करना चाहती थी, उतनी ही उनमें उलझती जाती थी। उन्हें मन से दूर निकालकर भी वह उनमें अपने को लिप्त पाती थी। चारो ओर उसके शब्द, उसका ही स्वरूप जैसे सुनाई और दिखाई पड़ रहा था। आनन्द के लम्बे केश मुख पर बिखरे थे, जिनमें न-जाने कब से तेल नहीं पड़ा था। वस्त्र साधारण होकर भी मैले नहीं थे। पैरों में चप्पलें थीं। गौर वर्ण था। ज्ञान का अगाध भण्डार जैसे उसके हृदय में भरा था। बिना रुके, बिना सोचे-विचारे वह जो कुछ कह जाता, उसे समझने के लिये उसे अपनी बुद्धि पर जोर डालना पड़ता था।

आनन्द उसे चुप देखकर फिर कहने लगा—'आप कहां तक सोचेंगी राजकुमारी, मैंने संसार को जैसा देखा है, वैसा ही कहा है। आप अपने राजपथ से निकलकर बाहर गईं ही नहीं हैं। अथवा अपने उद्यानों में घूम लेती हैं। यही तो विश्व

नहीं है ? इससे बहुत बड़ा भाग आपके चारो ओर फैला है, उसे भी तो देखिये, उसमें विचरिये। मेरी ही भाँति आप भी बन्दी बनी हैं। अन्तर इतना है केवल कि मुझे आपने बल-पूर्वक बना रखा है और आप स्वेच्छा से बनी हैं। मैं बन्धन खुलते ही उड़ जाऊँगा। आप बन्धन-हीन होकर भी बाहर नहीं जा सकेंगी। यह भी क्या जीवित रहना है ? आप राज-कुमारी हैं। आपको सभी कुछ चाहिये। इससे बाहर का संसार कितना आकर्षक है, वहाँ के लोग कितने सुन्दर हैं, यह आप अभी तक देख ही कहाँ पाई हैं ? मेरे साथ चलिये। जिस जन-मार्ग पर कंकड़ बिछे हैं, जहाँ काँटे ही काँटे हैं, उसपर आपको चलना सिखाऊँगा।'

राजकुमारी नीरजा जैसे तड़प उठी। आज उसे क्या हो गया है ? एक नागरिक क्या कह रहा है ? वह राजकुमारी न होकर क्या एक साधारण युवती-मात्र रह गयी है ? उसने कहा—'तुम बहुत बोलते जा रहे हो कवि ! क्या हाथों की भाँति तुम्हारा मुँह भी बँधवा दूँ ?'

'अब आप मुझे समझ गई हैं राजकुमारी। आपने मुझे कवि कह दिया है। कवि की वाणी अमर है। उसका ज्ञान अनश्वर है। उसके मुख को अब तक कौन बाँध सका है, देवि ? युग बीतते गये हैं, एक-एक पंक्ति जैसे अब भी कण्ठ मे भरी है। कितना आनन्द आ रहा है ? कितनी सुखद है कवि की कल्पना और उसका संसार ! कदाचित् आप वैसी ही अनु-भूति पा सकतीं।'

राजमहल से हटकर कुछ दूर पर कारागार बना था। जहाँ पर सब लोग आ गये थे। वहाँ से दो मार्ग जाते थे—एक राज-भवन की ओर और दूसरा कारागार की ओर। वहीं पर ठहरकर

राजकुमारी नीरजा सोचने लगी—वह अपनी आज्ञा से आनन्द को कारागार में बन्द करा दे, अथवा महाराज की स्वीकृति प्राप्त करे।

आनन्द ने पूछा—'क्या सोचने लगीं राजकुमारी? आज आपके सम्मुख मैं जो 'प्रश्न' बनकर खड़ा हूँ, इसका उत्तर क्या होगा, यही न? साधारण-सी बात है। कहीं आपको कविता की दो पंक्तियाँ सुना पाता? आप तो इतनी····जाने दीजिये। मुझे किधर चलने की आज्ञा है?'

राजकुमारी ने संध्या के उस मलिन प्रकाश में आनन्द के मुख को एक बार फिर देखा। कारागार की पत्थर की दीवारों के भीतर उसे बन्द कर देने की आज्ञा देने का उसका साहस नहीं हो सका, किन्तु राजाज्ञा का तो पालन करना ही पड़ता है। वह महाराज की पुत्री है, तो क्या? नियम सबके लिये समान है।

आनन्द ने कहा—'आप मेरे विषय में सोच रही हैं, क्यों देवी? मेरे लिये तो कारागार में रहने की आज्ञा हो चुकी है।' उसने सैनिकों से कहा—'चलो न, मैं कितना थका हूँ, सो तुम नहीं सोचते?'

राजकुमारी ने जैसे झटका खाकर अपने को सम्भाल लिया हो। संकेत से उसे कारागार की ओर ले जाने की आज्ञा देकर वह अशान्त मन, अस्थिर और निर्बुद्धि-सी होकर राज-भवन की ओर चली गई। कारागार की भीषण यातनाओं का स्मरण कर उसका शरीर सिहर उठा।

राजकुमारी नीरजा उस रात सो नहीं सकी। दो-चार पल को जब उसे झपकी आ जाती, तब लगता जैसे, आनन्द उसे अपनी ओर बुला रहा है। उसके हाथ-पैर बँधे हैं। मृत्यु-दण्ड पाये हुए

अपराधी के वस्त्र उसके शरीर पर झूल रहे हैं, और वह फिर भी मुस्कराता हुआ उससे कह रहा है—'आओ न राजकुमारी, मुझे विदा तो कर दो। अब तो इस जीवन में भेंट नहीं हो सकेगी।' वह उसकी ओर बढ़ी कि उसे किसी ने पकड़कर खींच लिया। कहा—'छिः, एक पागल कवि से प्रेम करने चली हो? अपनेपन को क्यों भूलती हो? तुम राजकुमारी हो। तुम्हें वरण करने राजकुमार ही आ सकते हैं। तुम क्या इस प्रकार अपने राजवंश को लांछित करोगी?'

वह जाग उठी, फिर उठकर बैठ गई। गर्मी से जैसे उसका कण्ठ तक सूख गया। 'यह सब क्या हो गया है मुझे? कहीं मैं पागल न हो जाऊँ? मैं क्या आनन्द से.........................?' उसने अपने से ही प्रश्न किया। हृदय की धड़कन ध्यान से सुनी। कोई कह रहा था—'हाँ, करती तो हूँ, किन्तु अज्ञात रूप से।'

वह उठकर खड़ी हो गई। 'यह सब मन का भ्रम है केवल' उसने कहा—'मैं इस प्रकार प्रेम में फँसनेवाली नहीं हूँ। मैं उसे ठुकरा दूँगी। आनन्द को निश्चय ही फाँसी का दण्ड दिया जायगा। उसने राजाज्ञा का उल्लंघन तो किया है, साथ ही मुझे भी चिन्ता में डाल दिया है। यह सब क्या कम अपराध है?'

उसने बाँदी को पुकारा। ऊँघती हुई वह आकर खड़ी हो गयी। राजकुमारी सोचती रही। उससे क्या कहे? ऐसी बात ही क्या है? फिर एकाएक झल्लाकर पूछा—'क्यों आई है?'

'जी, सरकार ने स्मरण किया था।'

'जा, मुझे कुछ नहीं कहना है। रात में भी सोने नहीं देती?'

बाँदी राजकुमारी के इस आकस्मिक परिवर्तन को किञ्चित् मात्र भी नहीं समझ सकी। आज प्रथम बार शीत में जागकर

उसने यह सब किया है। 'क्या—क्या……?' वह अपने ही भीतर प्रश्न और उत्तर बनकर तिरोहित हो चली। हाथ बाँधे हुए वह उल्टी लौट गई।

राजकुमारी को इतनी व्यग्रता ने घेर लिया कि वह अपने वस्त्र तक फाड़ डालने का उपक्रम करने लगी। गवाक्षों से जितना समीर आ रहा था, वह उसे स्वस्थ नहीं रख सका। झम-झम करती वह दौड़ती हुई छत पर चढ़ गई। दोपहर रात समाप्त हो चली थी। चारों ओर श्वेत-वसना चन्द्रिका बिखरी थी और नीले आकाश में टिमटिमाती तारिकायें जैसे अपना अस्तित्व खोकर प्रकाश-हीन हो चली थीं। हल्का समीर बह रहा था और उद्यान में खिली रजनी-गन्धा अपना सुवास जैसे उसी रात प्रसारित कर देना चाहती थी। शीत की गहन निस्तब्धता थी। केवल पहरुए ही बोल उठते थे रह-रह कर। राजकुमारी तीव्र गति से कई बार चक्कर लगा गई। रजनी इतनी सुहावनी हो सकती है, यह वह आज ही जान सकी। सहसा उसकी दृष्टि कारागार की ऊँची दीवार पर जाकर अटक गई। उस चाँदनी रात में भी वह विशाल दीवार और भीमकाय बनकर डरावनी-सी लगने लगी। आनन्द उसी में बन्द है। स्वच्छन्द होकर सारे विश्व में विचरनेवाला सुकुमार कवि, लौह-सीखचों से जड़ी कोठरी में पक्षी की भाँति फड़फड़ा रहा है। हठात् ही उसका मन कह उठा—'यह क्या अन्याय नहीं है? हमें किसी को बन्दी बनाकर रखने का अधिकार ही क्या है? मनुष्य जन्म से स्वतन्त्र है, फिर उसके लिये इतने बड़े कारागार की आवश्यकता ही क्या है? यह तो अत्याचार है? मैं उसे मुक्त करवा दूँगी। उसका अहित नहीं होने दे सकती मैं। उसका अपराध ही

क्या है ? इतने विशाल राज-पथ पर क्या राज्य के कर्मचारियों को छोड़कर कोई चल भी नहीं सकता ? यह कौन-सा नियम है ? मैं खुलकर विद्रोह करूँगी। आनन्द के लिये महाराज से लड़ूँगी।'

उसे जैसे उन्माद ने अपने वश में कर लिया। वह बड़-बड़ाती रही, फिर वहीं बैठ गयी और शीतल समीर का स्पर्श पाकर वहीं खुली छत पर सो गयी।

प्रभात हुआ। राजकुमारी ने आँखें खोल कर देखा—वह कहाँ आकर सो गई है ? रात में वह जो कुछ सोच गई थी और प्रकोष्ठ से निकलकर खुली छत पर आकर सो गई थी, इसकी भी उसे सुध नहीं थी। उसे अपने ऊपर हँसी आ गई। वह क्या भावुक हो गयी है ?

नियमानुसार राजदरबार लगा। महामन्त्री, महादण्ड-नायक, सेनापति, सामन्त तथा राजकर्मचारी सभी अपने-अपने स्थान पर आ बैठे। महाराज के आने की देर थी। राजकुमारी भी समय से पूर्व आकर महारानी के निकट बैठ गई। कुछ क्षण पश्चात् दण्डधर ने महाराज के आने की सूचना दी। सब उठकर खड़े हो गये। महाराज राज-सिंहासन पर आकर आसीन हो गये।

अन्य आवश्यक राज्य कार्यों की समाप्ति के बाद आनन्द उपस्थित किया गया। जिस दशा में वह कल संध्या को बन्दी हुआ था, ठीक उन्हीं वस्त्रों में और वैसे ही स्वरूप में वह महा-राज के सम्मुख दण्डवत् कर एक ओर खड़ा हो गया। सारी सभा उसकी ओर एकटक देखती रह गई। राजकुमारी ने संयत होकर राज्य की ओर से होनेवाले प्रश्नों का उत्तर सुनने के लिये, अपने को स्वस्थ और सजग कर लिया।

दण्डनायक ने आनन्द का अभियोग सुनाया। उसे न्यायोचित दण्ड देने की प्रार्थना की। महराज ने एक बार नीचे से ऊपर तक उसे देखा, फिर पूछा—'तुम अपना अभियोग स्वीकार करते हो बन्दी ?'

'जी नहीं राजन् !'

'क्यों ? राजपथ पर जब नागरिकों के चलने के लिये आज्ञा नहीं है, तो तुम उधर आये ही क्यों ?'

'मुझे अपने पक्ष में बोलने की आज्ञा दी जाय राजन् ! मैं जो चाहूँ, सो कह सकूँ।'

'किन्तु सब राज्य के नियमों के अन्तर्गत ही हो, अन्यथा और भी दण्ड के भागी होगे।'

'स्वीकार है।'

राजकुमारी नीरजा रह-रहकर विचलित हो रही थी। आनन्द क्या कहेगा ? भावुकता में बह जाने से उसे और भी कठोर यन्त्रणा सहनी पड़ सकती है। वह कुछ बोलने को हुई कि महारानी ने उसे पकड़ कर हिलाते हुए कहा—'क्या है नीरजा, तू किधर से बोलना चाहती है ? राजपथ पर आनेवालों को दण्ड नहीं मिलेगा, तो राजभवन में नागरिक नहीं घुस आयेंगे ?'

नीरजा बोली—'वह कवि है। सारे विश्व के नियमों का उल्लंघन कर सकता है। दण्ड सहने के लिये वह तत्पर है।'

महारानी बोलीं—'सुन, वह क्या कह रहा है।'

राजकुमारी ने उस ओर अपना ध्यान केन्द्रीभूत कर लिया। आनन्द कह रहा था—'आप साहित्य-प्रेमी हैं राजन्, यह मैं सुन चुका हूँ। विश्व-इतिहास में आपकी अक्षय-कीर्ति चिरस्थायी बनकर रह सकती है, किन्तु उसके लिये आपको यह राज-महल छोड़ना होगा। राजपथ पर आ जानेवाले भोले

नागरिकों को दण्ड देकर आप चिरन्तन सत्य का रूप नहीं देख सकते। आपको अपनी प्रजा के हृदयों में घुसना होगा। आपके राजपथ के समान उसका हृदय भी निर्मल है, किन्तु उसमें नागरिकों की गलियों की भाँति मलिनता की एक तह भी लगी है। भय और त्रास उन्हें खाये जा रहा है। उनके जीवन का संगीत अब लुप्त हो गया है। उनका स्वर मन्द्र सप्तक से भी नीचे जाकर विलीन होता जा रहा है। आप प्रजा-वत्सल हैं, तो मेरी ओर ही देखिये। राजकुमारी नीरजा जानती हैं, मैं दो दिन का भूखा था। कल और भी आपके कारागार में खाने को नहीं मिला। फिर भी मैं बोल रहा हूँ। मैं कवि हूँ राजन्, भूखा और निर्धन। कला और साहित्य के लिये मैंने अपना जीवन होम कर दिया है।' कहकर वह किसी की खोज में जैसे चारो ओर निहारने लगा।

राजकुमारी व्याकुल हो उठी। आबद्ध पक्षी की भाँति वह भीतर ही फड़फड़ाकर रह गई। महाराज मौन रहे।

आनन्द कहने लगा—'जीवन की गति की माप हम कवियों ने ही की है राजन्। शिव के सुन्दर स्वरूप की कल्पना आप भले ही कर लें, वैसी आभा आपको मिलेगी कहाँ? आपकी प्रजा का आर्तनाद मुझे सुनायी पड़ा। मेरे कान अब भी उसकी कर्कश वाणी सुन रहे हैं। उन्हें अन्याय की चक्की में पीसा जा रहा है। मैं अपने को रोक नहीं सका। कवि का स्वर मूकों का स्वर है, जनता का स्वर है। आप तक उसे पहुँचाने में बाधा पड़ती देखकर मैं विक्षिप्त बना। नियम का उल्लंघन किया। सोचा, अभियोगी बनकर तो आपके सम्मुख आ सकूँगा। और, आप प्राणदाता हैं, तो क्या अपनी प्रजा का सन्ताप नहीं हरेंगे? मुझे दण्ड दीजिये।'

महाराज बोले—'और कहते चलो कवि, मैं तुम्हारी भावनाओं का आदर करता हूँ।'

आनन्द भरी सभा में जैसे अपना प्रभुत्व स्थापित कर चुका था। चुपके-चुपके सभी उसके विषय में अपना-अपना मत निर्धारित करने लगे थे।

महामन्त्री ने अस्फुट स्वर से महाराज के निकट आकर कहा—'बन्दी अनर्गल प्रलाप कर रहा है अन्नदाता, प्रमादी है। दण्ड सुनाकर कारागार में बन्द करवा दिया जाय। अन्नदाता की प्रजा सुख-लाभ कर रही है।'

'नहीं महामन्त्री, उसे बोलने की आज्ञा मिल चुकी है। जब तक वह नहीं चुप होगा, उसे बोलने का अधिकार रहेगा। हम उसकी बातें ध्यान से सुनेंगे।'

महामन्त्री मौन हो गये।

आनन्द के नेत्रों ने इस बार राजकुमारी को ढूँढ़ लिया। उसे लक्ष्य कर वह सन्ध्या की सारी बातें स्मरण करता हुआ फिर बोला—'राजपथ जनता को दो राजन्। सारे नियम जो इस नगर को बाँट रखने के लिये बने हैं, तोड़ दिये जाँय। प्रजा को बोलने का अधिकार प्राप्त हो, यही मैं चाहता हूँ। राजकुमारी नीरजा ने मुझे कारागार में बन्द करने का भय दिखाया था, किन्तु वह राजाज्ञा थी। मैंने उसी एक रात्रि को उस अँधेरी कोठरी में बन्द होकर जीवन-का आलोक पा लिया है। मुझे सब स्वतन्त्र लगने लगे हैं। स्वतन्त्रता का मूल्य कोई नहीं आँक सका है श्रीमन्। मैं चाहता हूँ आप सबको बन्धन मुक्त कर दें।'

'और कुछ?'—महाराज ने प्रश्न किया।

राजकुमारी ने मन ही मन कह दिया—'सब के स्थान पर इन्हें अकेले बन्दी बना लिया जाय।'

आनन्द ने धीरे से कहा—'मुझे जाने की आज्ञा दे दी जाय। मेरा कार्य अब समाप्त हो गया है। मैं''''मैं''''।' उसकी दृष्टि राजकुमारी से मिल गई। वह चुप रहा फिर।

महाराज ने कहा—'तुम मुक्त किये गये आनन्द, किन्तु अभी जा नहीं सकोगे। हमारे अतिथि बनकर दस-पाँच दिन रहना होगा।'

आनन्द ने सर डाले सुन लिया। राजकुमारी नीरजा ने जैसे सर्वस्व पा लिया।

राजसभा विसर्जित हो गयी।

अतिथि-गृह के उद्यान में कवि आनन्द एक वृक्ष के नीचे बैठा नयी कविता की रचना में लीन था। मध्याह्न हो आया था। सूर्य की प्रखर किरणें अपना प्रचण्ड रूप धारण कर रही थीं। उसके शरीर से स्वेद-बिन्दु टपक रहे थे।

एकाएक राजकुमारी नीरजा उसके निकट आ खड़ी हुई। उसे लिखता हुआ जानकर भी उसका ध्यान अपनी ओर आकर्षित करती हुई बोली—'ऐसे समय में भी तुम कविता लिख सकते हो कवि?'

उसकी ओर देखे बिना ही आनन्द ने कह दिया—'जब आप ऐसे समय में राज-भवन से बाहर निकलकर आ सकती हैं, तब संसार का और कोई भी कार्य रुक सकता है?'

राजकुमारी मौन नहीं हुई, बोली—'मैं भी तो एक प्राणी हूँ आनन्द।'

'किन्तु राजभवन में रहकर पलनेवालों को संसार के सुखों की कल्पना भी कैसे हो सकती है ?'

राजकुमारी ने पूछा—'तुम्हें कवि किसने बना दिया आनन्द ? इतने प्रखर ताप में तुम्हारा हृदय दग्ध नहीं हो रहा है ? मै व्याकुल होकर जब और कहीं चैन नहीं पा सकी, तब मैंने सोचा—चलूँ तुम्हें ही देख आऊँ। पर देखती हूँ, तुम्हें गर्मी भी नहीं लगती। अब तुम्हीं कठोर हो गये हो, क्यों ?'

आनन्द ने कविता की अन्तिम पंक्ति पूरी करते हुए कहा—'कठोरता हृदय की होती है राजकुमारी। मैं प्रकृति के सभी परिवर्तनों को सहन कर लूँ, तो क्या वैसा बन गया ? मेरे मन की कोमलता अब भी आप नहीं जान पाई।' फिर कुछ रुककर बोला—'मैं सचमुच कठोर हूँ। कभी-कभी सोचता हूँ, सारे संसार में आग लगा दूँ, प्रलय मचा दूँ। सब कुछ नष्ट-भ्रष्ट हो जाय। आमूल परिवर्तन हो जाय। यह पेड़-पौधे, राजभवन और उद्यान आदि सभी ढह कर खँडहर हो जाँय। केवल मैं रहूँ, अकेला मैं, और तब जी भर कर अट्टहास करता फिरूँ। मैं जो चाहता हूँ, सो किसी दिन होकर रहेगा राजकुमारी। मैं ऐसा ही कवि हूँ।'

नीरजा के मुख पर और भी अरुणिमा छा गई। धूप मे आने से वैसे ही उसके कपोल रक्ताभ होते गये थे।

आनन्द कहता गया—'आपको भी अपनी अनुभूति से भर कर मैं यहाँ से जाऊँगा। जब तक आप कविता से दूर रहेगी, मैं आपके और निकट रहूँगा, और आपको अपनी

सम्पत्ति का एक अंश सौंप कर जब मैं जा सकूँगा तब देखूँगा कि आप भी मेरी भाँति बहकने लगी हैं। जीवन की कविता आपके हृदय-सागर से तरंगित होगी तब और उसकी मधुरिमा से आपका रोम-रोम गुञ्जित हो उठेगा। महाराज को कवियों से स्नेह है, साहित्य से प्रेम है, तभी तो मेरा कहा वरदान बनता गया। उनसे एक और प्रार्थना करूँगा।'

'क्या ?'

'नहीं बताऊँगा।'

'यह दूसरा राज-अपराध होगा।'

'मैं राज्य का नहीं महाराज का अपना अतिथि हूँ। मैं उस बन्धन से मुक्त हूँ राजकुमारी।'

उसने कहा—'मेरा अधिकार होता, तो मैं तुम्हें दण्ड दिलाकर छोड़ती। राज्य-व्यवस्था में इस प्रकार के अनुचित हस्तक्षेप उसे अनुशासन की सीमा से और दूर कर देते हैं।'

'यह आप हृदय से कहती हैं राजकुमारी ? आपकी दृष्टि उस समय कातर होकर मुझसे जो मूक प्रार्थना कर रही थी, उसे मैंने क्या नहीं समझा था ? तभी मैं रुक गया केवल आपके लिए। आपको मुझसे''''होगा। और सुनिये, जिस रात आपने मुझे कारागार में बन्द कराने की आज्ञा दी थी, वह आप भूली तो नहीं हैं ? आप उस रात सुख से पहले की भाँति ही सो सकी थीं ? आपके हृदय में जो संघर्ष मचता रहा, उसे आप कभी विस्मरण कर सकती हैं ?'

'यह सब तुम कैसे कहते हो कवि ?'

'यही कविता है राजकुमारी, यही उसकी अनुभूति है। यह हृदय का स्पन्दन है जो दूर-दूर तक अपनी वेदना वायु मण्डल के

स्तर-स्तर से प्रतिध्वनित कराता रहता है। इसे सुनना ही कवि की आत्मानुभूति से अपनापा जोड़ना है।'

नीरजा प्रभावित हो गयी। आनन्द जो कुछ कहता है, क्या वही सत्य है !

उसने पूछा—'और तुमने वह रात कैसे बितायी आनन्द ?'

'इसका उत्तर आप स्वयं ही जानती हैं। बिना बताये जो वस्तु जानी जा सकती है, उसे सोचने में बड़ा सुख मिलता है देवी नीरजा। आप तो युवती हैं।'

नीरजा ने भृकुटि चढ़ा ली, पूछा—'तुम्हारा यह सब कहने का अर्थ क्या है आनन्द ? अपनी सीमा से आगे क्यों बढ़ते हो ?'

'मेरा अर्थ नारी और पुरुष के सम्बन्ध से है। मैं डरता नहीं राजकुमारी। जो चाहूँगा, कह कर रहूँगा। आप यह शायद अभी तक नहीं समझ सकी हैं कि जो ज्ञान आपको गुरु से भी नहीं मिल पाता है, उसे कवि से सीखना पड़ता है। वह जगत्-गुरु है। अपना सारा जीवन तपस्या करके होम कर देता है। तभी किसी का होकर नहीं रह पाता वह। वेदना के गान आपके कानों में नहीं पड़े अब तक ?'

नीरजा बोली—'कोई इस प्रकार आपको बोलता सुन ले तो ?'

तब क्या देवि ? मेरे पास गोपनीय कुछ नहीं है। जो कुछ है, उसे सब पर प्रकट कर देता हूँ।'

राजकुमारी मौन रह गयी।

उसने उठकर खड़े होते-होते कहा—'हाँ, अब मैं चल जाऊँगा। अतिथि के रूप में रहकर इस प्रकार उत्तम भोजन करना क्या मेरे लिये शोभनीय है ?'

राजकुमारी उसके साथ चलती-चलती बोली—'तुम तो मुझे कवियित्री बनाकर जाने की बात कह रहे थे, हार गये क्या ?'

'यह आपने क्यों सोचा ?'

राजकुमारी लजा गयी।

'ठीक यही सब मन में आ जाता है देवी नीरजा। यही स्वाभाविक है और सत्य भी। इससे समाज का कौन प्राणी विमुख हो सका है ?'

राजकुमारी अपने भवन की ओर जाती हुई बोली—'अभी तुम जा नहीं सकोगे कवि। मेरी आज्ञा का उल्लंघन करोगे तो………'। अपना वाक्य अधूरा छोड़कर वह उसकी ओर निहारती हुई चली गई।

और आनन्द ने अथिति-गृह में जाकर कविता लिखी-'तेरी दृष्टि………।'

गाढ़ा अन्धकार घनीभूत होकर चारो ओर से उतर आकर समाता गया था। उद्यान में आनन्द एक शिला पर बैठा अपने घर लौटने की बात सोच रहा था। शिला के निकट ही खिले पुष्प अपनी सुगन्धि बिखेर रहे थे और वह उनकी ओर एक-टक ध्यानामग्न होकर जैसे अपनी सारी सुध-बुध खोये निहार रहा था।

सम्राट उससे राजदरबार के अतिरिक्त अब तक भेंट नहीं कर सके थे। आज न जाने क्या सोचकर वह इसी गाढ़े अन्धकार

में यहाँ तक चले आये। वह अकेले थे। अतिथि-गृह में न जाकर वह सीधे यहीं चले आये थे, और उसे ध्यानावस्थित देखकर चुपचाप एक ओर खड़े हो गये थे। आनन्द जैसे बेसुध था। उसे यदि वे अपने आगमन की सूचना न देते, तो वह जान भी नहीं पाता। यह सोचकर उन्होंने उसके कन्धे पर हाथ रख दिया।

आनन्द ने उनके हाथ का स्पर्श अनुभव करके भी किसी प्रकार की चेतना नहीं पाई। अपने ही विचारों में खोया वह बोल पड़ा—'आप हैं, तो बैठिये, किन्तु इतने अँधेरे में आपको आते डर नहीं लगा?' वह राजकुमारी नीरजा को आया समझ रहा था।

महाराज बैठे नहीं, बोले—'डर क्या है, इसे तुम जानते हो कवि? हम तुमसे कुछ सुनने आये थे, सुनाओगे?'

आनन्द अब मानो चौंक पड़ा। उठकर खड़ा होता हुआ नम्रता से बोला—'आपकी आज्ञा तो मुझे हर प्रकार से शिरोधार्य है राजन्! कहला भेजते। आपने कष्ट क्यों किया?'

'मैं इस समय महाराज नहीं हूँ कवि, साहित्य का एक प्रेमी और सरस्वती के वरद-पुत्र का आज्ञाकारी। तुम मुझसे महान् हो कवि।'

'यह कैसे सम्राट्?'

'तुम संसार के प्रत्येक प्राणी के हृदय-सम्राट् हो आनन्द। मैं किसी का हृदय नहीं जीत सका। बल पूर्वक शासन करना तो हिंसा है।'

'सच?'

'हाँ कवि, मैं इधर कई दिनों से ऐसा सोचने लगा हूँ। राज-दरबार में तुमने जो कुछ कहा है, वह सब मैं स्मरण रक्खूँगा। कवि की आत्मा ही स्वच्छन्द है विश्व में। मैं सारा ऐश्वर्य पाकर भी निरीह व्यक्ति हूँ आनन्द।'

आनन्द गद्गद हो गया।

महाराज ने कहा—'सुनाओ कवि, मैं तुम्हारी वाणी की उपासना करूँगा। तुम्हारे स्वर से अपने हृदय को सदा गुञ्जित रक्खूँगा। तुम सदा हमारे यहाँ नहीं रह सकते कवि ?'

'मेरा गृह सारा विश्व बने, यही कामना लेकर मैं निकला हूँ राजन्। मूक और असहायों का स्वर बनकर मैं उनके लिये जीविका का एक साधन भी बना हूँ। आपकी प्रजा को मुझ पर विश्वास है। आपके यहाँ अधिक दिनों तक रहने से कहीं वे लोग कुछ और न सोचने लगें और मुझसे ही न कोई धृष्टता हो जाय।'

'तुम अकेले हो आनन्द ?'

'जी, मेरी कविता मेरी संगिनी है। उसी में खोया रहता हूँ।'

'विवाह नहीं करोगे ?'

'इस ओर निश्चय नहीं किया है कुछ, क्योंकि हम लोग दुखी जो हैं। वेदना पल-पल पर हमारे जीवन में घुसकर हमें पथ का भिखारी बना देती है और फिर कवि तो पागल है। उसके साथ अपना जीवन गँवाना कौन चाहेगा ?'

हल्का समीर एक ओर से आकर दूसरी ओर सरसराता हुआ चला गया।

महाराज ने कहा—'हाँ, तुमसे बहुत-सी बातें करनी हैं आनन्द। देखता हूँ, उनका अन्त नहीं हो सकेगा। इस समय तो सुनाओ कुछ।'

आनन्द गुनगुनाने लगा। अचानक ही महाराज सामने किसी की आहट पाकर और अस्पष्ट और धुँधली छाया देखकर पूछ उठे—'कौन ?'

छाया चुपचाप उल्टी लौट गई। पेड़ों की ओट में उसने अपने को सघन कर लिया।

महाराज बोले—'कोई है, देख लूँ।'

आनन्द जानता था कि वह छाया निश्चय ही राजकुमारी है। वह अब अँधेरे में भी आ-जा सकती है। वह सम्राट् का हाथ पकड़ कर बोला-'होगा कोई, आप कविता सुनिये। आप प्रजा-वत्सल हैं अब। आपका अहित करने का साहस ही किसमें हो सकता है ?'

वह मान गये।

और आनन्द ने तन्मय होकर, अपनी सारी सुध-बुध खोकर, मधुर कण्ठ से जितनी कविताएँ सुनायीं, वे सब सम्राट के साथ ही पेड़ के नीचे छिपी राजकुमारी नीरजा के हृदय में समाती गयीं। सम्राट मन्त्र-मुग्ध से बैठे रहे और राजकुमारी आत्म-विस्मृत।

उन्होंने कहा—'तुम अब कहीं नहीं जा सकोगे कवि। यह मेरी आज्ञा नहीं, प्रार्थना है। बोलो मानोगे ?'

'विचारूँगा राजन्।'

राजकुमारी ने वहीं से मन ही मन कहा—'सोचना क्या, बन्धन में बाँध लूँगी तुम्हें कवि। तुम कितना सुन्दर गाते हो ? मैं जो कुछ खो चुकी हूँ, वह तुममें है आनन्द। तुम्हें मेरे निकट रहना ही होगा।'

आनन्द इन शब्दों को सुन तो नहीं सका, किन्तु राजकुमारी किसलिए बार-बार आती है, यह समझने से वह पीछे नहीं रह सका।

महाराज चले गये। छाया उनके प्रस्थान के पूर्व ही एक ओर छिप चुकी थी।

आनन्द सारी रात पड़ा-पड़ा सोचता रहा। मैं क्या करूँ?

महाराज राजकुमारी नीरजा के कक्ष में जाकर अचानक ही खड़े हो गये। वह उस समय आनन्द की कविता नेत्र मूँद गा रही थी। वह खड़े सुनते रहे। नीरजा को फिर भी सुध नहीं आई।

उन्होंने पूछा—'यह कविता कहाँ से सीखी, राजकुमारी?'

नीरजा उठकर बैठ गई। अपराधी की भाँति वह स्थिर और मौन होकर रह गयी।

'बोलो न, डरती क्यों हो?'—उन्होंने पूछा।

'आनन्द से लिख लाई थी।'

'उससे मिलने जाती हो?'

राजकुमारी 'हाँ' नहीं कर सकी।

'सत्य कहने से डरती क्यों हो बेटी?'—उन्होंने अपने स्वर में कोमलता लाकर पूछा।

'जी हाँ।'

'क्यों, कविता सुनने?'

'जी?'

'किन्तु तुम तो कवियों को पागल बताती हो? उन्हें अकर्मण्य कहती हो?'

'अब देखती हूँ वह मेरी भूल थी। मैंने कवि को अब पहचाना है।'

'तो कविता करना सीखोगी ?'

'मैं सीख नहीं पाऊँगी।'

'क्यों ?'

'मैं उतनी भावुक नहीं हूँ।'

'सुन तो सकोगी ?'

'जी हाँ।'

'कवि से मैंने यहीं रहने को कह दिया है।'—कहकर सम्राट् चिन्तित से लौट गये।

राजकुमारी नीरजा कविता गाना भूलकर कवि आनन्द के विषय में सोचती रही।

महाराज राजकुमारी के कक्ष से निकलकर सीधे आनन्द के पास जा पहुँचे। वह गृह के बाहर ही टहल रहा था। कोई विचार उसे रह-रहकर जैसे व्यथित कर रहा था। सम्राट् ने उसके कन्धे पर एक बार फिर हाथ रखकर उसे चैतन्य कर दिया, फिर बोले—'तुम यहाँ से चुपचाप चले जाओ कवि। तुम मुक्त हो। तुम्हें बाँधकर मैं नहीं रखना चाहता। फिर जब कभी चाहना चले आना। मैं तुम्हारा स्नेही सदा रहूँगा।'

आनन्द उनका मुख निहार कर रह गया, बोला—'जाना तो मैं चाहता ही था राजन्! आज सवेरे ही चला जाता, किन्तु राजकुमारी से एक बार मिलकर जाना चाहता हूँ। उन्होंने कविताएँ माँगी हैं।'

'राजकुमारी कल रात से अस्वस्थ हैं आनन्द।' कहा महाराज ने—'और जो रोग वैद्य ने बताया है, उसका निदान

यही है कि वह किसी से भी न मिलने दी जाय। वह भावुक होती जा रही है। उसे उन्माद-सा हो गया है।'

'तो मैं उन्हें देख भी नहीं सकूँगा राजन् ?'

'नहीं कवि, उसके प्राण संकट में हैं।'

आनन्द कुछ क्षण ठहरा, फिर अपने कक्ष में जाकर कविताओं का ढेर बाँधकर बाहर आ गया। महाराज को दण्डवत् कर वह एक ओर को चला गया। वह उसे देखते रहे खड़े, जब तक वह दृष्टि से ओझल नहीं हो गया।

सम्राट फिर अपने शयन-गृह में चले गये।

संध्या-समय महाराज फिर राजकुमारी के कक्ष में आ खड़े हुए और उसे कहीं जाने के लिये तैयार पाकर पूछा—'कहाँ जाओगी नीरजा ?'

'कवि से मिलने। मैं कविता करना सीखूँगी। मैं भावुक हो सकती हूँ।'

'किन्तु वह तो चला गया है।'

'कब ?'

'आज ही।'

'कहाँ ?'

'कौन जाने।'

'किन्तु आपने तो उनसे ठहरने को कह दिया था ?'

'हाँ राजकुमारी, वह हिंसा थी। बल का प्रयोग था। स्वच्छन्द प्राणी को बाँध रखना पाप है। मैंने उसे मुक्त कर दिया। कवि संसार का होता है, नीरजा बेटी। उस पर प्राणिमात्र का समान अधिकार है। वह अन्याय था।'



राजकुमारी वहीं स्थिर खड़ी रही।

महाराज ने कहा—'दुख क्यों करती है बेटी? वह फिर आयेगा।' कहकर वह धीरे-धीरे कक्ष से बाहर चले गये।

राजकुमारी लुटी-सी बैठी रही। उसके हृदय में हलचल मच रही थी—'क्या आनन्द फिर आयेगा?'

और आनन्द राजकुमारी नीरजा को विस्मरण करने का प्रयत्न करता हुआ अपनी कविता में खोया चला जा रहा था।

# फैसला

और अन्त में १५ जनवरी आकर ही रही। सुधा उस दिन सबसे पहले स्वयं पोस्ट-आफ़िस जाकर आलोका को नीरज के साथ विवाह की बधाई का एक्सप्रेस तार दे आई, जिससे वह उसे दोपहर तक, विवाह की रजिस्ट्री होने के ठीक बाद ही मिल जाय। अब नीरज उसका कोई नहीं है, फिर भी उसके विवाह पर वह उसे बधाई तक न दे, ऐसा उससे नहीं हो सका। जीवन के उस स्पन्दन को, जिसे नीरज ने एक दिन अनायास ही आकर तेज़ कर दिया था, अब और शिथिल होकर रह गया था और तब सुधा ने अनुभव किया कि मनुष्य के हृदय की निर्ममता की थाह पा जाना कदाचित् उतना ही दूर है, जितना बालू से तेल निकालना।

दो महीने पहले की बात है, जब नीरज उसे देखने आगरा आया था। सुधा का फ़ोटो उसके पास पहले आ चुका था, जिसे पसन्द उसने किया था और पत्र में लिखा था-आगरा आकर उसे देख लेने के बाद वह अपनी स्वीकृति दे सकेगा। सुधा ने उस दिन अवकाश ले रक्खा था। लड़कियों के एक कालेज में वह वार्डन थी और अभी तक अविवाहिता थी। नीरज के विवाह का विज्ञापन समाचार-पत्रों में निकला था। उसकी सहेली आलोका ने, जो स्वयं भी कुमारी थी और उसी कालेज में संगीत की शिक्षिका थी, सुधा का फ़ोटो एक पत्र सहित विज्ञापन में दिये पते पर भेज दिया था। सुधा को इसकी सूचना भी नहीं थी। नीरज की ओर से एक पत्र आया, जिसमें कुछ अन्य बातें पूछी गयी थीं। आलोका ने

उनका भी उत्तर दे दिया था, किन्तु सुधा को सारी बातें बतला-कर। एक दिन उसका विवाह होना ही था; इसलिए सुधा ने भी आपत्ति नहीं की।

और आलोका ने इस सबको केवल एक शिष्ट उपहास समझकर किया था, जिसका परिणाम वह किसी भाँति भी नहीं सोच सकी थी। कौन जानता था कि भाग्य का देवता इस प्रकार उसी के साथ खेल रहा है, और जिस सुधा के साथ नीरज के विवाह की चर्चा उसने अकस्मात् ही छेड़ दी है, वह उसके यहाँ आने पर निर्मूल होकर रह जायगी और नीरज, रूप और सौंदर्य का पुजारी उसकी कला पर मुग्ध होकर सुधा के स्थान पर उसके साथ ही विवाह का प्रस्ताव कर देगा!

नीरज का पत्र लेकर जब आलोका सुधा से मिली, तब वह बोली-'और तुम्हें मेरे साथ ही रहना होगा आलोका जितने दिन नीरज यहाँ रहेंगे। अकेले मैं कुछ नहीं कर सकूँगी'। फिर स्नेह से गद्‌गद् होकर उससे लिपटते हुए कहा था-'और इसका सारा श्रेय तुम्हें प्राप्त है आलोका। 'मैं--मैं—' आगे वह भावातिरेक से भर कर विह्वल और हर्षित हो बोल नहीं सकी थी।

आलोका ने कहा-'अभी तो पत्र ही पढ़ा है। उन्हें भी देखना चाहती हो, पर वादा करो, मुझे तो नहीं भूल जाओगी?'

सुधा ने उसके कपोलों पर एक हल्की चपत जमा दी।

आलोका ने लिफाफे से नीरज का फोटो निकाल कर दिखा दिया, बोली-'यही हैं तुम्हारे-तुम बड़ी भाग्यवान् हो सुधा।'

और सुधा के नेत्र बार-बार नीरज का फोटो देखकर भी नहीं भरे। सुन्दर और साफ मुख-मंडल, आकर्षक दृष्टि, सफेद

कमीज पर रंगीन टाई और नीला सूट। उसे देखने के लिये और देखने से भी अधिक पाने के लिए वह विकल हो उठी।

आलोका कमरे से जाती हुई बोली—'तुम्हारे विवाह में शायद सम्मिलित न हो सकूँ, क्योंकि परीक्षा चल रही होगी। इसलिए तुम दोनों को यहीं अपनी ओर से बधाई व शुभ-कामनाएँ दे दूँगी। उन्हें स्वीकार कर लेना सुधा। नीरज से मेरा भी परिचय करा देना। मंगल गीत सुनाऊँगी एक।'

सुधा ने आश्चर्य से पूछा—'तुम्हें तो वह पहले से जानते होंगे? सारा पत्र-व्यवहार तो तुम्हीं ने किया है?'

'पर अपने नाम से तो नहीं'—कहकर वह अपने कमरे में चली गई। सुधा नीरज के फोटो को फ्रेम में लगाकर उसे निरखने बैठ गई। एक प्रकार की अज्ञात कल्पना से उसका मन ही क्या रोम-रोम तक सिहर उठा।

नीरज को शाम की गाड़ी से आगरा आना था। सुधा आलोका के हजार कहने पर भी उसके साथ स्टेशन नहीं गई। पढ़ी-लिखी जरूर थी वह. किन्तु नारी-सुलभ लज्जा को तो तिलाञ्जलि नहीं दे सकती है? नीरज से अभी उसका सम्बन्ध जुड़ा नहीं है, जो वह उसके स्वागत में स्टेशन जा पहुँचे। आलोका को भी उसने जाने से रोका, बोली—'एक प्रकार की मिलने की उत्कण्ठा लेकर आना हो, तो मेरी विजय होगी आलोका। मेरा कहना मानो, तुम भी न जाओ। मैं प्रबन्ध किए दे रही हूँ, वे सीधे होटल पहुँच जायेंगे, फिर यहाँ चाय पर मुलाकात होगी। तुम मेरे साथ रहना। मुझे इस समय तुम्हारी सहायता की जरूरत है बहन। तुममें कला है न? तुम्हारी सूझ बड़ी पैनी है। मुझे उनका स्वागत किस प्रकार करना चाहिए, प्रथम दृष्टि उन पर कैसे डालूँ, किस प्रकार

उनका अभिनन्दन करूँ, कौन सी साड़ी पहनूँ, कैसे बाल गूँथे जायँ, किस रंग का ब्लाउज हो, सैण्डिल पहनूँ या चप्पल, मुख पर पाउडर आदि की जरूरत होगी या नहीं, यह सब तुम्हें ही बताना होगा आलोका ?'

आलोका मुस्करा दी। स्नेह से व्यंग्य करती बोली-'तो तुम यह सब भी नहीं जानती सुधा ? भला इस पर कौन विश्वास करेगा ? सैकड़ों पुस्तकें पढ़ चुकी हो। वर्षों से कालेज में पढ़ाती आई हो, और अब तो वार्डेन के नाते कुमारी और विवाहिता सभी प्रकार की छात्राओं के सम्पर्क में आ चुकी हो, किन्तु व्यवहार से बिल्कुल अनभिज्ञ ? वाह सुधा रानी, तुम भी खूब हो ! मैं भला यह सब क्या जानूँ ? अभी तो तुमसे भी छोटी हूँ और फिर कुमारी। पति को कैसे रिझाया जाता है, यह सब मैं कैसे बता सकूँगी ?'

सुधा उमंग में भरी थी, उसके कपोलों पर मादकता की अरुणिमा अपनी छाया बिखेर चुकी थी। उसके हृदय में गुदगुदी करवटें ले रही थी। वह अपने जीवन के पचीस वर्ष पार कर चुकी थी और स्वभावतः तब उसका ध्यान उस सुख को बटोर लेने के लिये व्याकुल होने लगा था, जिसे अब तक वह जानकर भी नहीं पा सकी थी।

आलोका को प्यार से चूमते हुए उसने आनन्दित होते हुए कहा-'तुम सब कुछ जानती हो आलोका, सभी कुछ। तुम्हीं मुझे यह दिन दिखा रही हो। मुझे भी तुम्हारे लिये किसी की खोज करनी होगी, पर आज तुम मेरी 'गुरू' बनी हो। कह दो कि मेरा सारा शृंगार तुम्हीं करोगी ?'

आलोका नारी हृदय में उठने वाली उमंगों से जैसे स्वयं भी भर गई, किन्तु सम्भल कर कहने लगी-'हाँ-हाँ, मैं सारा भार

लेती हूँ, पर स्टेशन जाकर दूर से ही उन्हें देख लेने दो एक बार। फिर तो वे तुम्हारे होंगे ही सुधा। मैं तो हँसी-मज़ाक कभी-कभी कर सकूंगी, और सो भी तुम्हारी मर्जी पर होगा। हाँ, तुम... ... ...।'

सुधा ने उसके मुख पर हाथ रख दिया, फिर घड़ी की ओर देखती हुई बोली-'हाँ, यह स्वीकार है। देखकर जल्दी ही लौटना। बातें न करने लगना कहीं। जाओ, समय हो रहा है।'

आलोका चल दी। सुधा ने फिर उसे रोक कर पूछ दिया-'और अपना मंगल-गीत तैयार कर लिया है न? आज तुम हम दोनों की ओर से यह वन्दना करो आलोका कि हमें कोई अलग न कर सके। हम सदैव एक रहें।'

आलोका ने सर हिला दिया, फिर बिजली की भाँति ओझल हो गई। सुधा ने उसके पैरों की गति पर ध्यान उस समय दिया, जब वह चली गई और उसकी स्मृति-पटल पर आलोका की सरल चितवन और दुग्ध-धवल सौन्दर्य तैरने लगा। आज उसने नाम को भी शृंगार नहीं किया था, किन्तु उसका रूप निखरा पड़ रहा था। उसके मन में आशंका हुई कि वे कहीं उसके स्थान पर आलोका को ही वरण न करने का निश्चय कर लें? फिर उसे ध्यान आ गया कि वह तो अन्य जाति की है। अन्तर्जातीय विवाह होते तो हैं पर नीरज उसके लिए क्यों तैयार होगा, जब उसे उस (सुधा) जैसी कमनीय बाला मिल रही है। वह आलोका से किस बात मे कम है? केवल यही तो कि वह संगीत नहीं जानती। यदि नीरज को संगीत से प्रेम है, तो वह उसे सीख लेगी। जो वह कहेगा, उसे ही वह करेगी।

उसी समय बाहर किसी की आहट मिली। होस्टल का नौकर था। उसके विचारों को एक ठोकर लगी, वह सम्भल गई। यह सब उसने क्या सोचा? आलोका के प्रति उसने ऐसा अविश्वास क्यों उत्पन्न कर लिया? वह तो निष्ठ-भाव से यह सब कर रही है। नीरज को यदि वह पसन्द भी आ जाय तो उसका इसमें क्या दोष है? पुरुषों के मन की जान भी कौन सकता है?

नौकर ने बाहर से कहा—'सारा सामान तैयार है। चाय आज्ञा मिलते ही तैयार हो जायगी।'

'ठीक है'—उसने उत्तर दिया—'तुम वहीं रहना।' कहकर उसने कमरे का दरवाजा बन्द कर लिया और अपने कपड़ों के बक्स खोल कर साड़ियाँ निकालने लगी।

आलोका गाड़ी के प्लेटफार्म पर आने के साथ ही स्टेशन पहुँच गई। नीरज का चित्र जो उसने देखा था, उसी के सहारे वह उसे खोजने लगी और तब उसने सहज ही देख लिया कि उन्हीं वस्त्रों में, वैसी ही टाई बाँधे नीरज गाड़ी के सेकेण्ड क्लास से उतरा है। उसने चाहा कि वह उसकी दृष्टि से बच-कर चुपचाप वापस लौट आए और यही वचन सुधा को देकर वह आई भी थी, किन्तु उसे इस सबको निश्चय करते कुछ समय लगा, तब तक नीरज उसके निकट आ गया। आलोका ने उसे जो पत्र लिखा था, उसमें उसे स्मरण हो आया कि किसी न किसी के स्टेशन पर मिलने की बात भी थी। नीरज कुछ उसी भाव से बार-बार उस की ओर देख रहा था। अभी कुछ पूछ सकने का उसका साहस न हो सका था।

गेट पर भीड़ थी, नीरज को रुकना पड़ा। कुली सामान लिए खड़ा था। आलोका ने नीरज को देखकर भी न देखने

का भाव बना लिया, जैसे वह किसी और काम से आई है। नीरज से उसका कोई मतलब नहीं है। किन्तु जैसे ही वह बाहर जाने लगी, नीरज भी उसी के पीछे चल पड़ा। कुली से उसने कहा—'जिस ताँगे पर यह सवार हों, उसी पर सामान रख देना।'

आलोका ताँगे पर आ बैठी और ताँगा चलने ही वाला था कि कुली ने नीरज का सामान लाकर रक्खा। पूछने पर नीरज की ओर संकेत कर दिया।

वह उस समय कुली को पैसे देकर विदा कर रहा था। उसने कहा—'जी मैं हूँ नीरज, मथुरा से आ रहा हूं और आप सुधा देवी द्वारा भेजी गई हैं शायद?'

आलोका लाल होकर रह गई। दबे स्वर से बोली—'जी, पर आपने पहचान कैसे लिया?'

नीरज ने उसकी ओर देखा, फिर कहने लगा—'यही तो मैं अपने से पूछ रहा हूँ। कुछ ऐसा लगा आपको देखकर कि आप चाहे न भी बोलें, हजार छिपाएँ, पर आप आई मेरे लिए ही हैं। क्यों, थी न यही बात?'

आलोका इनकार नहीं कर सकी। नीरज को उसका वह मौन उत्तर इतना प्रिय लगा कि वह सुधा के फोटो से उस प्रत्यक्ष सामने खड़ी रूप—राशि की समानता करने लगा। आलोका अभी कुमारी है, यह भी उसने जान लिया और फिर अभी बिगड़ा भी क्या है? सुधा से तो वह वचनबद्ध नहीं है किसी प्रकार? उसे तो देखने के बाद स्वीकृति देने की बात हुई है। वह जैसे असमंजस में पड़ गया।

आलोका ने साहस कर पूछा—'तो आज्ञा कीजिए।'

नीरज जैसे और भी उसकी ओर प्रभावित हो गया। उसकी वाणी का माधुर्य उसे और भी प्रिय लगा। वह सजग होकर बोला—'आप जैसा कहें। अरे हाँ, आपका नाम पूछना तो भूल ही गया ?'

'आलोका' धीरे से उसने कह दिया।

नीरज कुछ आगे कहने जा रहा था कि वह बोली—'मैं सुधा को वचन दे आई थी कि आपसे मिलूँगी नहीं। उसे निभा नहीं सकी, इसका मुझे दुःख है। वह जानेगी, तो न-जाने क्या सोचेगी ?'

'सोचेगी क्या ?' नीरज बोला—'मेरे लिये तो कम-से-कम आपका आना बड़ा शुभ रहा।'

आलोका और अधिक रुकना नहीं चाहती थी। घड़ी की ओर देखकर कहने लगी—'ओहो, कितनी देर हो गई मुझे, जल्दी चलिए। रास्ते में आप होटल में उतर जाइएगा। मैं होस्टल चली जाऊँगी।'

दोनों ताँगे में आ बैठे। आलोका अकेली पीछे बैठी और नीरज आगे फिर मार्ग भर उन दोनों में जो बातें हुईं, उनसे परिचय और भी गाढ़ा हो गया। नीरज आलोका को भी पसंद आया। होटल आ जाने पर नीरज उतर गया और आलोका उसे तैयार रहने के लिये कहकर आगे बढ़ गई।

सुधा बार-बार घड़ी देखती थी और आलोका के ऊपर झुँझला रही थी। अब तक उसे वापस आ जाना चाहिए था।

अभी कितनी तैयारी करनी पड़ी है ? उसे वहाँ जाने की यों कोई जरूरत भी नहीं थी। निश्चय ही अपना रूप दिखाने गई होगी। तब वहीं क्यों न शादी कर ले उसके साथ ? उसने खीझ-कर अपनी मुट्ठी बाँधी और थके-से स्वर में बोली—'ऐसी मजाक मुझे पसन्द नहीं है आलोका। मैं तुम्हें ऐसा नहीं समझती थी।'

ठीक उसी समय आ गई आलोका, कहने लगी—'कैसा नहीं समझती थी सुधा ? कौन मजाक कर रहा है तुमसे ? सुनो, नीरज जी आ रहे हैं। अब तुम तैयार हो जाओ। मैंने उनसे भी तैयार होने को कह दिया है। जब तुम दोनो सज-धज जाओगे, तो यह सेविका दोनों का मिलन करा देगी।' फिर उसके गले में बाहें डालकर उसके नेत्रों में झाँकते हुए कहा—'बिलकुल वैसे ही हैं वे, जैसा फ़ोटो आया है। बड़ा अच्छा स्वभाव है और एक बात जानकर तुम और भी खुश होगी कि वह गाते बड़ा अच्छा हैं।'

सुधा तुनक गई। मन पर साँप लोटने लगा। एक प्रकार की शिथिलता ने उसका सारा उत्साह भंग कर दिया। व्यंग्य भरे स्वर में बोली—'तुम तो कहती थीं कि बातें नहीं करोगी, पर पता यहाँ तक लगा लाई हो ? अच्छा है, तुम्हीं उनसे कर लो विवाह। तुम दोनों की जोड़ी भी अच्छी रहेगी।'

आलोका को बड़ा दुःख लगा। रोनी सी सूरत बना कर बोली—'तुम नाराज़ हो गईं सुधा। क्षमा करो, मुझसे भूल हो

गई। उनसे तुम्हारा ही विवाह होगा। चलो, अब देर नहीं है। कपड़े बदल लो। उन्हें भी बुलाने आदमी भेजा है।'

सुधा ने जिद नहीं की। आलोका ने उसके लिये वस्त्रों का चुनाव किया, केशों में ताजे फूल लगाए, सैन्ट की शीशी कपड़ों पर उँडेल दी, कपोलों पर हल्का पाउडर लगाया और नेत्रों में बारीक काजल। फिर उसे शीशे के सामने खड़ा कर कहा—'कौन तुम्हारे इस रूप पर मुग्ध नहीं होगा सुधा बहन? पुरुषों की तो सामर्थ्य नहीं जो तुमसे बिना प्रीति जोड़े रह सकें। और फिर वे तो सौंदर्य के बड़े उपासक हैं।'

सुधा अपने ऊपर कुछ क्षण के लिये जैसे फूल उठी। अपना रूप उसे स्वयं ही मनमोहक लग रहा था।

आलोका ने कहा—'और मुझे भी मंगल गीत की तैयारी करनी है। जाती हूँ अब। बुलवा लेना। कहीं ऐसा न हो जो तुम लोग मुलाक़ात कर लो और मैं वे सुखद क्षण देख भी न सकूँ?'

'नहीं-नहीं, और तुम ऐसे ही मत आना आलोका। कपड़े बदल लेना। चाहो तो मेरे पास से लेती जाओ।'

आलोका तब तक कमरे से बाहर जा चुकी थी। सुधा की बात केवल उसके अपने तक ही रह सकी।

जिस समय नीरज का ताँगा वार्डेन के बँगले की ओर पहुँचा, होस्टल की कई लड़कियाँ अपने अपने कमरे से उसे देख रहीं

थीं । सुधा ने किसी को भी वहाँ जाने की अनुमति नहीं दी थी और साथ ही वह यह भी चाहती थी कि इसका प्रचार अधिक न हो। नीरज के स्वागत के लिये सुधा के साथ आलोका भी आगे बढ़ी। वह इस समय जैसे और भी लापरवाह दिखाई पड़ रही थी। हल्की बासंती रंग की साड़ी के ऊपर ऊनी शाल कंधे पर लटक रहा था, जिसने उसके गौर वर्ण को और भी नयनाभिराम बना दिया था और जिसे नीरज लाख प्रयत्न करने पर भी अपनी आँखों में नहीं भर पाता था।

सुधा कुछ लजाई सी हाथ जोड़ कर खड़ी हो गई। आलोका ने कहा—'यही हैं सुधा देवी, आपकी भावी पत्नी'। फिर नीरज की ओर संकेत कर कहा—'और आप श्री नीरज जी तुम्हारे............।'

तीनों बरामदे में खड़े थे, सुधा ने धीरे से कहा—'और ये हैं आलोका देवी, जिन्होंने............।'

नीरज ने बीच ही में कह दिया—'उनसे मेरा परिचय हो चुका है।'

आलोका मुस्करा उठी। सुधा को जैसे इस प्रथम वार ही में करारी हार हुई हो, किन्तु वह उसे व्यक्त करना नहीं चाहती थी।

कमरे में आकर तीनों कुर्सियों पर बैठ गए। सुधा चाय बनाने लगी। नीरज ने तब उसे और भी ध्यान से देखा। जैसा उसका फोटो भेजा गया था उसमें और वास्तविक सुधा में उसे बड़ा अन्तर लगा और वह अन्तर इतना बढ़ता गया कि

उसके मुख पर फिर दृष्टि टिकाना उसके लिए असह्य हो गया। आलोका उसके हृदय पर अपना अधिकार जमा चुकी थी। सुधा चाय बनाने के साथ-साथ कनखियों से उसकी ओर देख लेती थी।

चाय समाप्त हो गई। बीच-बीच में बातें चलती रहीं। सुधा ने आलोका का पैर दबाकर संकेत किया कि वह नीरज की स्वीकृति के सम्बन्ध में पूछे। उसे ही लक्ष्य कर उसने कहा—'अब हम लोग आपकी स्वीकृति चाहती हैं।'

'स्वीकृति' दोहराकर नीरज कुछ क्षण के लिए रुका, फिर बोला—'मथुरा जाकर अपना फैसला मैं लिख भेजूँगा। हाँ, अब आप गाना सुनाइए।'

'सो तो मैं सुनाऊँगी ही। पर एक बात और कह दूँ।' आलोका ने कहा—'सुधा में और भी कई गुण ऐसे हैं, जिन्हें आप उनके निकट जाने पर ही जान सकेंगे।'

नीरज मुस्करा दिया।

सुधा ने उस मंगल गीत के लिए आग्रह किया। वह नीरज को स्वीकृति न देते पाकर शंकित अवश्य हो गई थी, फिर भी निरंतर हँसने और अपनी मुद्रा गम्भीर न होने देने का प्रयत्न करती रही।

आलोका ने मंगल गीत गाया। नीरज अब अपने विचारों पर और स्थिर होता जा रहा था। उसने मुक्त-कंठ से उसके संगीत-ज्ञान की प्रशंसा की और उसके आग्रह से फिर नीरज

को स्वयं भी एक फ़िल्मी गीत गाना पड़ा। आलोका भी उससे कम प्रभावित हुई हो, सो बात नहीं थी।

थोड़ी देर तक और बातें चलने के बाद नीरज चला गया। वह रात सुधा और आलोका दोनों के लिए एक नवीन अनुभव की थी। वे अपने-अपने कमरे में पड़ी करवटें बदलती रहीं। सुधा के मन में रह-रहकर उठ रहा था कि आलोका ने उसे ठगा है। उसके साथ विश्वासघात किया है। नीरज को उसने अपनी ओर झुका लिया है। वह अब उसका नहीं हो सकेगा। और आलोका से जब उसका हृदय पूछता कि क्या वह नीरज को पसन्द आ गई है? सुधा के स्थान पर क्या वही नव-वधू बननेवाली है, तो वह उत्तेजित होकर स्वयं कह उठती—'वह नहीं जानती यह सब। नीरज ने सुधा के स्थान पर उसे पसन्द किया, इसमें उसका क्या दोष? उसने सुधा को नहीं छला है।'

और तीसरे दिन नीरज का तार मिला। लिखा था—'सुधा उसे क्षमा करे। आलोका उसे पसन्द आई है।'

दो महीने बीत गए। इस बीच नीरज और आलोका के अन्तर्जातीय विवाह का जिक्र लोगों के मनोरंजन का विषय हो गया था। सुधा के प्रति सबको समवेदना प्रकट करनी पड़ी कि बेचारी का भाग्य ही पलट गया। आलोका यदि न होती, तो नीरज सुधा का होता, यह निश्चित था। किन्तु अब हो क्या सकता था? आलोका नीरज के प्रस्ताव को ठुकराने की क्षमता

नहीं रखती थी। वह ऊँची सरकारी नौकरी में था। आकर्षक था और संगीत का प्रेमी। जो गुण आलोका अपने पति में चाहती थी वे सभी नीरज में विद्यमान थे। जीवन में फिर उससे बढ़कर और साथी मिले न मिले, इससे इस सुअवसर को वह हाथ से क्यों निकल जाने दे? साथ ही यदि वह सुधा के लिए इनकार कर दे, तो भी नीरज उसके (सुधा) साथ विवाह करने पर कदाचित् ही तैयार होता?

सुधा को भाग्य के इस क्रूर व्यंग्य को न चाहते हुए भी सहना पड़ा। उसकी सारी आशाएँ धूल में मिल गईं।

नीरज अपने फ़ैसले के बाद फिर आगरा नहीं गया। सुधा को उसने एक लम्बा पत्र लिखकर अपनी स्थिति स्पष्ट कर दी और आलोका को इस निर्णय से पूर्ण निर्दोष सिद्ध कर दिया। जो कुछ उसने विचारा था स्वयं ही। अतः यदि उसके मन में कुछ शेष हो, तो वह उसके प्रति ही रहे।

आलोका ने उसी दिन से छुट्टी ले ली और अपने घर चली गई। वह ऐसी स्थिति नहीं आने देना चाहती थी, जो सुधा के हृदय को और ठेस पहुँचाए।

और पन्द्रह जनवरी को मैजिस्ट्रेट के कमरे से जब नीरज और आलोका अपने विवाह की रजिस्ट्री कराकर निकले, उसी समय उन्हें सुधा का भेजा बधाई का तार मिला—लिखा था—काश कि मैं इस शुभ अवसर पर मंगल-गीत गा सकती! मेरी वर-वधू को हार्दिक बधाई—सुधा।

# लकीरें

गौरी पार्क से भाषण सुनकर लौट रहा था। एक तपे हुए राष्ट्रीय नेता आए थे, उनका स्वागत किया गया था। जय-जयकारों के बीच उन्हें ले जाया गया था। गले में फूलों की मालाएँ उन्हें और भी विनम्र बनाए दे रहीं थीं। उनके होठों पर निरन्तर मुस्कराहट बिखरी रही, जिसे गौरी रह-रहकर देखता रहा था। और उनके वे शब्द–उसे सब कुछ स्मरण है। मार्ग भर वह भीड़ में धक्के खाकर भी उन्हें नहीं भूल सका है। नेता ने उच्च स्वर से कहा था—'देश और राष्ट्र की उन्नति के लिए अभी हमें त्याग और बलिदान को अपने भीतर प्रज्वलित रखना होगा। जिस स्वर्ण-किरण ने हमारे जीवन-पथ को आलोकित कर उस पर अपना स्निग्ध प्रकाश फैलाया है, उसे चिरस्थायी रखने का प्रयत्न हम अपना सर्वस्व देकर भी करें। आज हमें नये समाज को जन्म देना है—उस नये समाज को, जिसके कर्णधार वे नवयुवक होंगे, जो अपने चरित्र-बल से नैतिकता को साथ लिए चल रहे हैं। और....।'

गौरी उनके भाषण के जितने शब्द स्मरण रख सका, सबको दोहरा गया। नये समाज की स्थापना—उस समाज

की, जिसमें सभी सुखी हों, पेट भर खाना मिल सके और तन ढकने को कपड़ा। किन्तु यह सब क्या सम्भव है? उसे संशय होने लगा। यही तो वह समाज है, जो नया रूप धारण करने जा रहा है और जहाँ........। उसने मुँह बना लिया, जैसे नीम की पत्ती खा गया हो।

रास्ते भर फिर वह अन्यमयस्क ही रहा। अपने से उलझता जब वह घर पहुँचा, तब सूरज का लाल गोला पेड़ों के पीछे डूब चुका था। अपने कमरे में पहुँचकर वह कुर्सी में जैसे समाकर रह गया। किसी से बात करने का मन नहीं चाहा। नये समाज की निर्माण-व्यवस्था उसके सम्मुख बार-बार आती थी। यह क्या सम्भव है? उसने मन-ही-मन प्रश्न किया। भाषण देना अब जितना सरल हो गया है, उतना ही कठिन उसे कार्यान्वित करना है। स्वार्थ-लिप्सा से घिरा रहकर मनुष्य क्या समष्टि की बात सोच पाता है?

करुणा अब तक रसोईघर में थी। कमरे में आकर देखा, तो गौरी को नेत्र मूँदे कुर्सी में धुसा पाया। निकट आकर उसके कंधे पर हाथ रखकर बोली—'बड़ी जल्दी आ गए! मन नहीं लगा क्या?'

गौरी का बोलने का मन नहीं था। उसके आदर्श के सारे स्वप्न चूर हो चुके थे। उसके महत्त्वाकांक्षी बनने की खिल्ली उड़ाई जाती थी। समाज-सुधार की उसकी अपनी योजनाएँ थीं, जिन्हें सुनकर लोग कहते—'पागल हो गौरी।

अपनी व्यक्तिगत उन्नति की बात सोचो। समाज के लिये तुम अपनी क्रियाशीलता क्यों नष्ट कर रहे हो? उसे ऐसे ही चलने दो।'

करुणा ने उसे मौन पाकर फिर कहा—'नेता बनने की सोच रहे हो क्या? भाषणों का हम लोगों पर बड़ा प्रभाव पड़ता है। अच्छा है, हमें भी वे दिन देखने को मिलेंगे, जब जनता तुम्हारे जय-जयकार के साथ आकाश सर पर उठा लेगी।'

गौरी को लगा कि करुणा उसका उपहास कर रही है। वर्ग-संकट में फँसा साधारण परिवार का गौरी क्या इस जीवन में कभी नेता बन सकेगा? उसने अपनी उपेक्षा होती जानकर भी उसे सहन कर लिया। धीरे से बोला—'तुम नहीं जानतीं करुणा, देश के पुनरुद्धार की आवश्यकता है। आज का समाज सड़ गया है, विकृत हो गया है। उसे काटकर फेंक देने की आवश्यकता है। तुम यह सब नहीं जान सकतीं। मैं नये समाज का निर्माण करूँगा—उस नये समाज का, जिसमें शोषण की भयंकरता अपनी छाया भी न दिखा सकेगी। हमें स्वस्थ विचारों की नवीन धारा बहानी होगी।'

करुणा समझ गई, यह सब भाषण का प्रभाव है जिसकी भावुकता में गौरी डूब-उतरा रहा है। अनेक बार वह इसी प्रकार की बातें दृढ़ता से कह चुका है। बच्चे को पास बिठाकर वह यही सब समझाया करता है। उसने कहा—

'तब तुम भी ऊँची-ऊँची बातें करने लगोगे। जनता के कष्ट तो उनसे नहीं दूर होते ? उसे आज जितनी चिंताओं ने घेर रक्खा है, उसके सामने जितनी समस्याएँ हैं, उन्हें दूर करने के लिए क्या किया गया है ?'

गौरी ने उत्तर नहीं दिया।

करुणा कहती रही-'चारों ओर से दुर्भाग्य ने घेर लिया है। सभी की ऐसी दशा है। जो शिक्षित हैं, उनके यहाँ महँगाई और भी घुस आई है। जब पेट भरने को अन्न नहीं मिलता, पहनने को कपड़े नहीं मिलते, तो उच्च-विचार लेकर भी क्या हो ?'

गौरी इस महँगाई के काल में पिस गया था। अनेक बार मन-ही-मन झुँझला भी चुका था—राष्ट्रीय सरकार है यह। सभी स्वार्थलिप्सा में लिप्त हैं...। दूसरों की क्या चिंता ? जनता चाहे मरे या जिये, उन्हें तो अपना सम्मान कराना है, अपना पद स्थापित किए रहना है। और तब उसे नेताओं के भाषण स्मरण आते, जिनमें धैर्य से कष्ट सहने की बात कही जाती थी, घी-दूध की नदियाँ बहने का स्वप्न दिखाया जाता था। गौरी जानता था कि जब तक खाने-पहनने की सुविधा नहीं होती, तब तक न तो देश को शक्तिशाली बनाया जा सकता है और न यहाँ के उच्चादर्शों से दूसरे देशों को ही चकित किया जा सकता है। आज का युवक इसलिए प्रौढ़ है कि उसे किसी प्रकार की सुविधा नहीं मिल पाती। और तब नये

समाज का निर्माण कैसे होगा ? जनता में उस सबको समझने की सामर्थ्य कहाँ से आ सकेगी ? आज करुणा की बातें तीर-सी चुभकर भी सत्य लग रही थीं। बोला—'किन्तु करुणा, तुम यह क्यों भूल जाती हो कि हमें देश और राष्ट्र के लिये सभी कुछ सहना चाहिये। हमें नये समाज की स्थापना में योग देना ही चाहिये। और तुम तो.........।'

करुणा ने उसकी बात बीच ही में काट दी—'मैं सब समझ गई। तुम घर फूँक कर तमाशा देखना चाहते हो ! देखो, जीवन में यह भी सही।'

गौरी कुर्सी में ही धुसा रहा।

करुणा कमरे से बाहर जाती हुई कहती गई—'सोच लो फिर से। मुझे अपने साथ पाओगे हर समय।'

गौरी मेज़ पर रक्खी पुस्तक उठाकर देखने लगा।

गौरी श्रमजीवी पत्रकार था। अपने महान् आदर्शों की अवहेलना उसे सहन नहीं थी। किसी दफ्तर में बाबू बनकर बैठने अथवा कम्पनी का एजेन्ट बनकर नगर-नगर घूमना उसे नहीं रुचा। अपना स्वर, अपनी विचारधारा, वह जनता तक किस प्रकार पहुँचा सके, इसी उद्देश्य को लक्ष्य कर उसने पत्रकारिता का कार्य प्रारम्भ कर दिया। घर में पत्नी और एक बच्चा है। जो कुछ उसे जीविका चलाने के लिये मिल जाता है, उससे मास के पन्द्रह दिन भी नहीं कट पाते। करुणा उसे

अपनी माँगें पूरी करने के लिये तंग नहीं करती, यही उसे संतोष है। वह कभी-कभी सोचा करता है कि एक से दिन सदा नहीं रहते। आज नहीं, तो कल वे दिन फिर आएँगे, जब खाने-पीने की सुविधा होगी। रहने की उचित व्यवस्था होगी। सरकार पत्रकारों को जीवित रखने के लिये प्रबन्ध करेगी ही।

करुणा चाय बना रही थी। बीच-बीच में उसकी ओर सर उठाकर देख लेती थी। जिन विचारों की लकीरें उसके मुख पर खिच गई थीं और उसे प्रौढ़ता की ओर घसीटे लिये जा रही थीं, वहीं पर बार-बार वह अटक जाती थी। मन में बड़ा बैसा लगा यह सब देखकर। अभी उसकी उमर ही क्या है? खाने-पहनने के दिन हैं। तब यह चिन्ता की रेखाएँ। उसके हाथ से दूध का बरतन पृथ्वी पर छूट पड़ा।

गौरी चौंक पड़ा। देखा, सारा दूध फैल गया था। करुणा सहमी-सी रह गई।

कहा उसने—'जाने दो करुणा, बिना दूध की चाय हम लोग पिएँगे। तुम ठीक कहा करती हो। जब शरीर में बल नहीं है, तो इन सबको उठाया भी कैसे जा सकता है?'

करुणा तत्परता से बोली—'नहीं-नहीं, दूध तो अभी और है। थोड़ा-सा बचा लिया था। तुम्हारे मुख पर फैली लकीरों को देख रही थी। तुम कैसे होते जा रहे हो?'

'कैसा होता जा रहा हूँ?' गौरी ने दोहराया।

'यही कि अभी से बुढ़ापा घेरता आ रहा है। पहले जैसी चुस्ती वह सब अब न जाने कहाँ चली गई है ?'

गौरी मुस्करा पड़ा। बोला—'बचपन के बाद वृद्धावस्था ही आएगी करुणा। यौवन-काल कब समाप्त हो जाएगा, इसकी खबर हमें नहीं लग सकेगी। हम साधन-हीन हैं रानी। एक पत्रकार जीवन से संघर्ष तो कर सकता है, जनता को मोटे-मोटे शीर्षकों में ओजस्वी शब्दों से घसीट सकता है, किन्तु अपना पेट नहीं भर सकता वह। इस समाज की ऐसी ही व्यवस्था है करुणा! मैं इसी लिये तो नये समाज के निर्माण की बात कहा करता हूँ, जिसकी नीव सत्य और न्याय पर रखी गई हो। जिसके पास कला है, बुद्धि है, उसका आदर किया जाय। उसे जीवित रखने के लिये राष्ट्र उत्तरदायी हो। उनकी ओर अधिक उपेक्षा करना अपनी संस्कृति, अपनी सभ्यता का ह्रास है, घोर पतन है।'

करुणा ने चाय में दूध डालकर प्याला उसकी ओर बढ़ा दिया, बोली—'ठीक है, पर इसे समझने के लिये सरकार के पास समय भी है? समाचार-पत्रों में, भाषणों में वे ही लम्बी-लम्बी योजनाएँ, धैर्य से बैठे रहने की अपील, नवीन प्रणालियों का विकास और जनता तो प्रयोगशाला है, यही सब भरा रहता है। शासन की एक भूल महान् भूल है। लाखों उससे तबाह हो जाते हैं, पर उस सबकी ओर अंगुली उठाए ही कौन ?'

गौरी चाय पीने लगा।

बच्चे ने प्याले की ओर हाथ बढ़ाया। करुणा ने पूछा—'चाय दे दूँ इसे ?'

'नहीं' कहा गौरी ने—'चाय ग़रीबों के पेट भरने का एक साधन है करुणा, तभी तो हम दुर्बल हैं। किन्तु हमारी संतान वैसी न बने। उसे दूध दो। वह हमारे नये समाज की नींव का एक पत्थर बनेगा।'

बच्चा हाथ उठाए था। उसने कहा—'तू दूध पी बेटे, राष्ट्र की शक्ति है न ?'

करुणा उसे दूध पिलाने लगी, फिर बोली—'एक बात कहूँ, मानोगे ?'

गौरी ने प्रश्नसूचक दृष्टि से उसकी ओर देखा।

कहने लगी करुणा—'वह जो पड़ोसी मनोहर बाबू हैं न, उनकी स्त्री आई थी। मनोहर बाबू बीमार हैं। छुट्टी बिना वेतन मिली है। घर में खाने को नहीं है, दवा कहाँ से आए ? दो बच्चे पढ़ रहे हैं। अपनी अंगूठी रख गई है। बड़ी ख़ुशामद करती रही बेचारी। कहती थी, जो कुछ मिल सके, वही दे देना।'

गौरी का हृदय भर आया। चाय का प्याला मेज़ पर रख दिया। मन हुआ, कुछ न बोले। इस पर बैठा चुपचाप विचारता रहे। धीरे से कहा—'यही दशा तो सारे मध्य-वर्ग की है करुणा, जो सफ़ेद पोशाक में अपनी नग्नता और

खोखलापन छिपाए है। अंगूठी लौटा दो उनकी। जो कर सको, वह करना।' फिर कुछ रुककर खड़ा हो गया, बोला—'मैं अभी उसके यहाँ जाता हूँ। उससे कहूँगा कि वह अन्याय की चक्की में पीसा जा रहा है। उसे संघर्ष करना होगा। नये समाज-निर्माण में उसे सहयोगी बनाऊँगा। अभी न जाने कितने बलिदान देने होंगे।' वह बाहर चला गया।

करुणा वैसी ही बैठी देखती रही। बच्चा गोद से उतरकर बरामदे में दौड़ना चाहता था। सूर्य की किरणें जैसे नव-प्रभा लेकर आँगन में बिखर पड़ी थीं।

# धब्बे

मजिस्ट्रेट त्रिवेणीशंकर ने डायरी के पृष्ठ खोले। कल अठारह अक्तूबर है। उन्हें नीला के उस प्रार्थना-पत्र पर विचार करना है, जो उसने एक सप्ताह पहिले उनकी अदालत में दिया है और जिसके द्वारा उसने सारे अभियोगों को, जो उसने एक दिन स्वयं बाबू दुर्गाप्रसाद के विरुद्ध लगाये थे, मिथ्या कहा है। उन्हें आश्चर्य हो रहा था कि जिस नीला ने एक दिन भरी अदालत में रो-रोकर अपने बयान दिये थे और दुर्गाप्रसाद द्वारा अपने नारीत्व को बल पूर्वक भ्रष्ट करने का आरोप लगाया था, वही अब उनके प्रति एकाएक इतनी सदय कैसे हो गयी है? नीला का उस दिन का आँसुओं से भरा मुख उनके सम्मुख आ गया और वे सोचने लगे कि एक नारी क्या अपने चरित्र के साथ इतना बड़ा छल कर सकती है? वह इतनी निर्लज्ज हो सकती है कि अपनी पवित्रता पर कलंक लगा ले? उनका जी लम्बी बीमारी के बाद उठे रोगी की भाँति झुँझला उठा। नीला ने उनके हृदय की सारी सहानुभूति पा ली थी और वे दुर्गाप्रसाद को नर-पशु, नारकीय-कीट आदि कहकर, अपने हृदय पर पत्थर-सा रखे सारे मुक़द्दमे की कार्यवाही करते रहे थे। किन्तु आज वह सब विलीन

होता जा रहा था। नीला ने पैसे की चमक से चकाचौंध होकर अपने ऊपर कितना तीखा व्यंग्य किया है, उसे स्मरण कर वे जैसे रह-रहकर क्षुब्ध हो उठते।

रात को जब वे सोने गये, तो पत्नी से बोले—'जिस नीला की दुहाई देते-देते तुम रात-दिन एक किये हो, वह तो चरित्र-भ्रष्टा है।'

पत्नी को सहसा विश्वास नहीं हो सका। वह जानती थी कि जिस दिन से नीला का मुकद्दमा उनकी अदालत में आया है, वह नीला के पक्ष में अपना मत रखते हैं। और एक दिन तो उन्होंने दुर्गाप्रसाद के साथ ही सारी पुरुष-जाति को बुरा-भला कह डाला था। आज अनायास ही उसी नीला के विपक्ष में उन्हें बोलते सुनकर उसे अपार विस्मय हुआ, पूछा—'तो ऐसी नयी बात भी क्या हो गयी? नीला निश्चय ही अकलंक है। मैं नहीं समझती कि....।'

बीच ही में बात काट दी त्रिवेणीशंकर ने—'तुम समझ भी सको उसे? मैंने विचार कर लिया है। नीला की ओर से एक प्रार्थना-पत्र दिया गया है कि उसने दुर्गाप्रसाद के विरुद्ध जो मुक़द्दमा चलाया है, वह झूठ है। वास्तव में ऐसी कोई भी घटना नहीं हुई है। किन्हीं परिस्थितियों से बाध्य होकर इस काल्पनिक घटना को अदालत के सामने लाना पड़ा। इससे दुर्गाप्रसाद का जो अपमान हुआ है, उसके लिये भी वह खेद प्रकट करती है।'

पत्नी क जैसे किसी ने चिकोटी काट ली हो। उसके सामने नीला का भोला मुखड़ा आ गया, जिस पर अवसाद की गहरी छाया व्याप्त थी और जिसके मूक किन्तु डबडबाये नेत्र अपनी नारी के प्रति किये गये अत्याचारों के लिये न्याय की दुहाई माँग रहे थे। वही नीला अब इस सारी घटना को स्वयं ही कल्पित बताकर दुर्गाप्रसाद को छुड़ाना चाहती है? मन ने कहा—ठीक है। त्रिवेणीशंकर झूठ तो नहीं कह सकते। स्त्रियों के मन को कौन जान सका है? और फिर नीला जैसी नारी, जो विपत्ति में थी, यदि अपने शरीर का सौदा''''छि; बात दूर तक बैठती चली गयी। फिर मुक़दमा चलाने की जरूरत क्या थी? वह पूर्ण युवती है। एक बच्चे की माँ है। उसका पति है और''''और पतन इस सीमा तक पहुँच जायगा, इसे कौन जान सका था? निश्चय ही वह स्वेच्छा से दुर्गाप्रसाद के साथ गयी होगी।

त्रिवेणीशंकर बिजली के प्रकाश में उसके मुख के भावों का उतार-चढ़ाव देख रहे थे। कुछ क्षण रुककर बोले—'क्या सोचने लगीं? विश्वास नहीं होता क्या?'

रुकते-से कहा उसने—'विश्वास न करूँ, ऐसा भी कुछ नहीं सोच पाती। पर नीला ने ऐसा किया क्यों?'

त्रिवेणीशंकर ने प्रार्थना-पत्र की मुख्य बातें सुना दीं जिसमे नीला के वकील ने यह भी लिखा था कि उसके पति को इस घटना से अपार दुख हुआ है, और वह आत्महत्या करने पर

उतारू है। उसकी इस ग्लानि को दूर करने के लिये और वास्तविक स्थिति प्रकट करने के उद्देश्य से यह आवश्यक है कि अदालत में उसे स्पष्ट कर दिया जाय। नीला दुर्गाप्रसाद की सज्जनता की आभारी है। यह सब दलबन्दी का दूषित परिणाम है, जिसका शिकार अनजाने ही भोली नीला को हो जाना पड़ा। वह इस मुक़द्मा को वापस लेना चाहती है और.........।'

त्रिवेणीशंकर इसके बाद एकाएक चुप हो गये। पत्नी आगे सुनने के लिये व्याकुल हो रही थी। उन्हें मौन पाकर पूछा—'और क्या ?'

कुछ नहीं, त्रिवेणीशंकर बोले—'वह मैं अपनी ओर से कहने जा रहा था। अदालत उस पर विचार करेगी।'

उस विचार को मैं आज नहीं जान सकती ? पत्नी ने आग्रह किया।

त्रिवेणीशंकर गम्भीर हो उठे थे, बोले—'अदालत की कार्यवाही घर में जानी नहीं जा सकती। और अभी तो विपक्ष का मत लेना है, क्या पता दुर्गाप्रसाद अपनी मान-हानि का दावा कर दे और मुक़द्मे की वापसी के लिये अपनी स्वीकृति न दे।'

इतना कहकर उन्होंने पत्नी की ओर देखा। वह दीवार पर टँगे एक चित्र की ओर देख रही थी। त्रिवेणीशंकर के चुप हो जाने पर भी उसने उनकी ओर नहीं देखा। वे क्या निर्णय देंगे, इसे वह अपनी सहज बुद्धि और त्रिवेणीशंकर की पत्नी

होने के कारण अनेक मामलों में राय स्थापित करने के बाद सोच चुकी थी ! नीला आर्थिक संकट में ग्रसित होगी और दुर्गाप्रसाद ने पैसे का लोभ दिखाकर उसकी पवित्रता का आवरण उतारा होगा। किन्तु बाद में""""और बाद में जैसा सदा से होता आया है कि पुरुष नारी को ठोकरें खाने के लिए निकाल देता है। पर नीला जब अपनी लज्जा गँवा चुकी थी, तो छिपाकर भी क्या रखती ? भरी अदालत में उसने कह ही दिया कि जिस प्रकार दुर्गाप्रसाद ने"""""। उसने अंचल से अपना मुख ढक लिया। बिजली की बत्ती अब उस महीन साड़ी के भीतर से धुँधली दिखाई पड़ने लगी थी, जिसके चारों ओर पतिंगे चक्कर काट रहे थे। दुर्गाप्रसाद सोचता होगा कि उसने नीला के सतीत्व का अपहरण कितने सहज ही में कर लिया। सचमुच ये लोग आचार-भ्रष्टा होती हैं। ज़रा-सा लालच दिया कि तितली बनकर चारों ओर मँडराने लगीं। किन्तु जब मामला अदालत में पहुँच गया, तो उसे अपनी बदनामी का डर खाये जाने लगा। उसकी प्रतिष्ठा पर आँच आ गयी और उसकी जन-सेवाओं पर कालिख पुत गयी। अख़बारों में मोटे-मोटे कालमों में उसके कृत्यों का वर्णन छापा जा रहा है। वह क्षुब्ध हो उठा होगा। जिस नीला को वह अपनी अंकशायिनी बना चुका था, उससे आँख मिलाने का भी उसका साहस नहीं हो सका। तब उसका मुँह बन्द करने के लिए और अपनी क्षत-विक्षत

कीर्ति को पुनः लौटाने लाने के लिये उसने नीला का अंचल कागज़ के टुकड़ों से भर दिया होगा। और यही कदाचित नीला के मुक़दमा वापस लेने की कहानी है। किन्तु दुर्गाप्रसाद के कलंक को क्या नीला अपना प्रार्थना-पत्र देकर धो सकेगी ?

त्रिवेणीशंकर उसकी ओर देखते रहने के बाद अकस्मात् पूछ उठे—'सो गईं क्या ?'

'नहीं तो' कहकर उसने मुख पर से अँचल हटा दिया—'नीला के मुक़दमे का फ़ैसला कर रही थी। उससे मिलना चाहती हूँ एक बार।'

त्रिवेणीशंकर बोले—'शायद वह स्वयं भी आये। पर उसे रोकना मत। और मेरे सामने यहाँ आये भी नहीं।'

पत्नी ने 'हूँ' कर दिया।

और तब बत्ती बुझाकर दोनों नींद आने की प्रतीक्षा करने लगे।

त्रिवेणीशंकर १८ तारीख को जान-बूझकर देर से अदालत गये।

दुर्गाप्रसाद एक ओर खड़ा अपने वकील से मुस्कराकर बातें कर रहा था। अपनी सारी मान-मर्यादा धूल में मिलती जानकर भी उसे किसी प्रकार का क्षोभ नहीं हो रहा था।

अदालत के दूसरे कोने में नीला अपने पति के साथ खड़ी थी। उसका वकील उसे कुछ समझा रहा था, जिसे वह मनो-

योग पूर्वक सुन रही थी और बीच-बीच में अपना सर हिलाती जाती थी। उसने जान-बूझकर दुर्गाप्रसाद की ओर नहीं देखा। अदालत के कमरे में दर्शक पुलिस कान्सटेबिलों के बार-बार हटाने से भी बाहर नहीं जा रहे थे। नीला पर सबकी आँखें लगी थीं। कोई-कोई नीला के चरित्र पर भद्दा मजाक कर आपस में जी बहला रहे थे और कुछ बिगड़े दिल वाले उसके सौन्दर्य से प्रभावित होकर दुर्गाप्रसाद-काण्ड की पुनरावृत्ति करने की योजना बना रहे थे।

मैजिस्ट्रेट त्रिवेणीशंकर के सामने नीला के मुकदमे की फ़ाइल रख दी गयी। अदालत ने विचारना प्रारंभ कर दिया। नीला और दुर्गाप्रसाद अपने-अपने वकीलों के साथ आगे बढ़ आये। कार्यवाही प्रारम्भ हो गयी। नीला ने सर झुकाए अपने दिये आवेदन-पत्र की स्वीकृति दे दी और उसके वकील ने मुकदमा उठा लेने की अनुमति चाही। इसी समय भीड़ में से एक बूढ़ा आगे निकल आया। उसने अपना परिचय नीला के पिता के रूप में दिया और अपने हाथ का कागज़ आगे बढ़ा दिया। नीला उसे सब कुछ रोकती रही, किन्तु वह नहीं माना। मैजिस्ट्रेट त्रिवेणीशंकर गम्भीर थे, जैसे गहराई में और भी डूबने-उतराने लगे हों।

प्रार्थना-पत्र में लिखा था कि चूँकि मुकदमा उसने चलाया था और नीला उसकी लड़की है, अतः वह अब भी दुर्गाप्रसाद के विरुद्ध मुक़दमा लड़ना चाहता है। उसकी बेटी नीला को

दुर्गाप्रसाद व उसके आदमियों ने मार डालने की धमकी दी। और बलपूर्वक उससे मुक़दमे की वापसी का प्रार्थना-पत्र दिलवाया है।

त्रिवेणीशंकर चश्मे के भीतर से कभी नीला, कभी दुर्गाप्रसाद और कभी उस बूढ़े की ओर देख लेते। चारों ओर से काना-फूसी होने लगी थी। मुक़दमा पेचीदा बनता जा रहा था। त्रिवेणीशंकर कुछ क्षण तक मौन रहे फिर फाइल पर आँखें दौड़ाते रहने के बाद पेशकार से बोले–'आज इसमें कुछ नहीं हो सकेगा, अगली तारीख़ दे दो।'

धीरे-धीरे भीड़ कम होती चली गई और जब नीला बाहर आई तो एक नौकर ने उसके निकट आकर कुछ कहा। वह उसके साथ ताँगे में जा बैठी।

नीला जिस समय त्रिवेणीशंकर के यहां पहुँची, उनकी पत्नी जैसे उसी की प्रतीक्षा में बैठी थी। ताँगा वापस लौटा देने को कहकर उसने नौकर को पैसे दे दिये, फिर नीला को अपने कमरे में ले जाकर बिठाती हुई बोली वह–'एक बार तुमसे मिलने का मन था, तभी बुला भेजा। अदालत तुम्हारे मामले में जो निर्णय करेगी, वह उसके अधिकार की बात होगी। पर एक नारी के नाते मैं तुमसे सच बात जानना चाहती हूँ।'

नीला कुछ क्षण को सोच में पड़ गयी। मैजिस्ट्रेट की स्त्री उससे जो कुछ पूछ रही है, उसका प्रभाव क्या अदालत के निर्णय पर नहीं पड़ेगा? वह क्या करे? यदि नहीं बताती है,

तो भी मामला बिगड़ सकता है। अभी वह कुछ निश्चय नहीं कर पाया था कि मैजिस्ट्रेट की पत्नी ने फिर कहा—'बोलो न नीला बहन, मेरा विश्वास नहीं होता क्या ? मैं भी एक नारी हूँ, तुम्हारी ही जाति की। तब तुम्हारे चरित्र का पतन सारी नारी-जाति के चरित्र का पतन हो सकता है। संकोच न करो।'

'बहन' शब्द सुनकर नीला रो पड़ी। उसकी आँखों से दो बूंद आँसू टपक पड़े। उस का मन चाहने लगा कि वह मैजिस्ट्रेट की पत्नी के पैरों पर लोटकर अपना सारा अपराध स्वीकार कर ले। वह कितनी सहृदय है, जो उसे यह पवित्र सम्बोधन दिया है।

मैजिस्ट्रेट की पत्नी ने उसकी पीठ पर हाथ रख दिया फिर उसके आँसू पोंछती बोली—'रोती हो नीला ? अपने किये का पश्चाताप ही उस गलती का सुधार है। बताओ, तुम दुर्गा-प्रसाद के साथ स्वेच्छा से गयी थीं या उसने.........?'

नीला ने गला साफ कर धीरे से 'हाँ' कर दिया।

मैजिस्ट्रेट की पत्नी अपने स्पष्ट शब्दों में सहानुभूति उँडेलती हुई बोलीं-'तुम्हारे इस मामले ने मुझे न जाने कैसा कर दिया है नीला ? बिना बोले और बिना तुम से सब कुछ सुने मुझसे रहा नहीं जा सकता। मैं तुम्हारे मुँह से ही सारा विवरण सुनना चाहती हूँ। पहले तुम्हारे प्रति सहानुभूति थी और दुर्गाप्रसाद को शायद अदालत कड़ा दंड भी देती, किन्तु तुम्हारे आवेदन-पत्र ने सारी परिस्थिति ही बदल दी। बोलो

न नीला, तुमने यह सब क्या किया ? इस पत्र को देते समय अपने रो-रोकर दिये गये बयानों पर भी तो दृष्टि डाली होती ? तुमने यह चोट कैसे सह ली नीला ? तुमने एक बार भी इसकी गहराई पर नहीं विचारा ? तुम्हारे लिये क्या यह एक खेल ही रहा ?'

नीला को एक साथ कितने प्रश्नों का उत्तर देना था, यह शायद वह स्मरण न रख सकी, किन्तु मौन रहना भी उसके लिये असम्भव था। मैजिस्ट्रेट की पत्नी को सब कुछ बताना होगा। सर नीचे डालकर वह बोली 'सचमुच गलती मेरी है। मैं छली गयी। मैंने दुनिया नहीं देखी थी। मेरी निस्सहाय अवस्था ही मेरे पतन का कारण है। मैं अपना सब-कुछ गँवा-कर यहाँ आयी थी। उन्हें काम नहीं मिल रहा था और यह मँहगाई.........' उसकी आँखें भर आयीं।

मैजिस्ट्रेट की पत्नी उसकी ओर देखती रही।

नीला ने फिर स्वस्थ होकर कहा—'पैसे की चमक ने मुझे इस नरक में घसीट लिया। मैं ऐसी फिसली कि सम्भल नहीं सकी। मैं नहीं जानती थी कि पुरुष इस प्रकार औरतों के भूखे होते हैं। वे मनुष्यता को पल-भर में भुलाकर भेड़िये बन जाते हैं, जिनकी जबाने उन्हें देखते ही बाहर निकल आती हैं। मुझे दुर्गाप्रसाद के प्रति आशंका नहीं हुई। मैं उन पर विश्वास करने लगी। वे एक प्रतिष्ठित नागरिक हैं। घर-द्वार सभी कुछ है। उन्होंने मेरी सहायता करने की हामी भरी। मैं उनका

आश्वासन पाकर उनके साथ गयी और तब''''तब आगे का हाल आप जानती ही हैं। मेरे साथ सभी कुछ हुआ। मैं न रोई, न चिल्लाई। सब कुछ सहती रही। आप इसे मेरी मरजी समझ लीजिये, चाहे परिस्थिति-वश इसका होना समझिये, पर मेरी मृत्यु तो उसके बहुत पहले हो चुकी थी। उस सबको सुनाने की सामर्थ्य मुझमें नहीं है।'

मैजिस्ट्रेट की पत्नी ने अस्थिर होकर पूछा—'तो फिर नीला तुम उसके विरुद्ध लड़ी क्यों नहीं ? कमजोरी क्यों दिखायी ? कानून तुम्हारे साथ था ?'

नीला एक सर्द आह खींचकर रह गयी।

मैजिस्ट्रेट की पत्नी बोली—'स्पष्ट है कि तुम्हें दुर्गाप्रसाद के बल ने झुका दिया है। पर वह बल भय या दबाव का नहीं है। रुपए का है। आज सभी को आश्चर्य होगा कि दुर्गाप्रसाद के आगे चोरी-छिपे से झुकने की अपेक्षा जनता के सामने भी तुम्हें झुकना पड़ा है। धन चरित्र से ऊपर तो नहीं है ?'

नीला के पास उत्तर नहीं था, फिर भी उसने धीरे से कह दिया—'आप ठीक कहती हैं। मैं नारी-जाति के लिये एक कलंक बन गयी हूँ। आत्महत्या ही इसका प्रायश्चित्त है। मैं अब जीना नहीं चाहती।'

मैजिस्ट्रेट की पत्नी ने सांत्वना देनी चाही—'ऐसा कोई

सोचता है ? पागल मत बनो नीला। एक पाप करके दूसरा और भी करने का विचार कर रही हो ?'

नीला चुप रही।

मैजिस्ट्रेट की पत्नी बोली—'एक कहा मानोगी ?'

नीला ने सर हिला दिया।

'तो उस सारे रुपए को दुर्गाप्रसाद के ऊपर फेंक दो। वह पाप का धन है। तुम्हारे शरीर का सौदा कर उसने वह मूल्य में तुम्हें दिया है। नारी को सदा से अग्निपरीक्षा देनी पड़ी है, उत्सर्ग होना पड़ा है। तुम भूल जाओ वह सब। कड़ुये विष की भाँति उसे नारी की मर्यादा की रक्षा के लिये पी जाओ। तुम्हारे उस पिछले नारकीय जीवन की मृत्यु भले ही हो जाय, किन्तु आत्मा कुन्दन की भाँति निर्मल होकर चमक उठेगी। तुम्हारा वह सारा काला अतीत.........।'

और वाक्य समाप्त होने के पहले ही नीला उनके पैरों पर गिरकर सिसकने लगी। मैजिस्ट्रेट की पत्नी के भी आँसू आ गये। नीला के प्रति उसके मन में ममता भर गयी थी। सोने-सी नीला और उसके साथ यह नारकीय व्यवहार.........!

कुछ देर बाद प्रकृतिस्थ होकर नीला जब जाने लगी, तो झुककर बार-बार उसे प्रणाम कर गयी और कह गयी कि आजीवन वह उनकी इस सलाह को गाँठ में बाँधे रहेगी। इन्होंने उसे एक नया पथ दिया है।

और संध्या-समय जब त्रिवेणीशंकर अदालत से लौटे, तो

पत्नी ने कहा—'नीला भोली मानवी ही तो है। उसे संसार में पुरुषों द्वारा फैलाए गये कुचक्रों का क्या बोध ? वह ठगी गयी है और उसकी नारी के पवित्र आवरण को पुरुष ने अपनी वासनात्मक पशु-प्रवृत्ति से उतारा है। समाज में ऐसे जितने पाप होते रहेंगे, पुरुष ही उनके प्रति सदैव उत्तरदायी रहेंगे।' फिर पूछा—'और मुक़दमे में क्या हुआ ?'

त्रिवेणीशंकर निरुत्तर-से सर झुकाकर अपने कमरे में चले गये।

# अंगार

दमयंती सोच रही थी कि वह किस दुरावस्था में अनायास ही आकर पड़ गई है ? यौवन के मृदु-झकोरे उसे एक दिन अपने में बाँधकर ले उड़े थे। उसने एक बार भी पीछे मुड़कर नहीं देखा कि जिस ओर वह उड़ी जा रही है, वहाँ पैर रखकर टिकने को स्थान भी मिल सकेगा या नहीं ? जीवन जैसे मधुर-संगीत से मुखरित होकर अपने आकर्षण में बाँधता जा रहा था और वह ठगी-सी, आत्मसात् बेसुध और निश्चेष्ट होकर नेत्र मूँदे कहती गई थी—'यही तो सब कुछ है। जीवन को और कसकर पकड़ रखने के लिये, उसमें डूबने उतरने के लिये, संसार में भटकना ही पड़ेगा। मन के कोने में जो कुछ छिपाकर रख सकी हूँ, उसे पूर्ण करना होगा।'

उसने गहरी साँस ली, फिर अलसाए भाव से सामने बेन्च पर बैठे हुए पुलिस कांसटेबिल की ओर देखा और अजीब-सा भाव बनाकर बाहर खिड़की की ओर देखने लगी। गाड़ी पूरी गति से जा रही थी। एंजिन के कभी-कभी शा-शा कर देने और पहियों की गड़गड़ाहट के अतिरिक्त और कुछ स्पष्ट सुनाई नहीं पड़ रहा था। कांसटेबिल बैठा ऊँघ रहा था। वह

खिड़की में और झुक गई। आकाश मेघों से आच्छादित था। चारों ओर अँधेरे की छाया गहरी थी। वर्षा अभी होकर रुकी थी और ठन्डी हवा शीतल स्पर्श दे रही थी। दमयंती ने मन-ही-मन कहा—'और आज यह काली अँधेरी रात मेरे जीवन में घुस आई है। कौन जानता था""आह! वह सब भुला ही दूँ।'

तभी किसी के हलके स्पर्श ने उसे चौंका दिया। उसने पीछे मुड़कर देखा, बूढ़ा कांसटेबिल था। अपनी निद्रित पलकें झपकाता हुआ कह रहा था—'क्या गाड़ी से कूद पड़ने का विचार कर रही है? खिड़की पर बहुत न झुकिए।'

दमयंती ने खिड़की से हटकर उसके मुख की ओर देखते हुए कहा—'डरो नहीं, मैं मरने के लिये घर से नहीं निकली हूँ। अभी संसार मैंने देखा ही कहाँ है?' फिर जैसे उसे प्रभावित करती हुई बोली—'तुम तो नौकरी में रहे, अब बूढ़े हो गए हो। मुझसे कहीं अधिक जानते हो। देख-सुन भी चुके हो। पर मैं जितना कुछ जानती हूँ, उससे यही अनुमान लगा पाई हूँ कि चारों ओर जो हास-विलास बिखरा पड़ा है, उसे आजीवन पकड़ने के लिये मनुष्य यदि प्रयत्नशील रहे तो""? तो बूढ़े बाबा, क्या हो भला, बता सकते हो? कह-कर वह खिड़की के बाहर फैले अन्धकार में जैसे अपनी दृष्टि गड़ाकर कुछ ढूँढ़ने का प्रयत्न करने लगी।

बूढ़ा कांसटेबिल दमयंती की बातों में उलझकर रह

गया। वह गाँव का रहनेवाला था, किन्तु अपनी नौकरी के बीस वर्ष शहर मे बिता चुका था। पुलिस का नौकर था। न जाने कितनी इस प्रकार की घटनाएँ देख चुका था। किन्तु दमयंती जैसी लड़की उसने अब तक नहीं देखी थी। शिक्षित होकर इस प्रकार जीवन की रंगीनी में अपनी यौवन-मदिरा छलका रही है यह? उसने सोचा, क्या यह सामाजिक उच्छृङ्खलता नहीं है? एक युवती घर से निकलकर, एक अपरिचित, अजातीय युवक के साथ इस प्रकार चल दे? सारे देश में साम्प्रदायिक दंगे हो रहे हैं। बलपूर्वक धर्म-परिवर्तन कराया जा रहा है, तब भी क्या ...? वह अपने ओठ काटकर रह गया। जातीयता के नाम पर उसका ख़ून गर्म हो उठा। उसने घृणा से एक बार दमयंती की ओर देखा।

गाड़ी का वेग कुछ कम होता जान पड़ा। दो-चार मुसाफिर अगले स्टेशन पर उतरनेवाले थे। वे अपना सामान सँभालने लगे। कांसटेबिल अब तक ठीक से न बैठ सकने के कारण बार-बार मन-ही-मन झुँझला रहा था। अभी तो उसे सारी रात गाड़ी में बितानी थी। दूसरे दिन कहीं वह दोपहर तक इलाहाबाद पहुँच सकेगा। उसे अपने पैर सारी बेंच पर फैला दिए और सर के नीचे अपना बिस्तर लगाकर लेट रहा।

दमयंती डब्बे में होनेवाली खटपट से अपना ध्यान एक ओर नहीं लगा सकी। वह भीतर चारो ओर देखती रही और फिर जब गाड़ी स्टेशन पर ठहरकर आगे चल पड़ी, तो

उसने कांसटेबिल से पूछा—'क्यों, सोओगे बूढ़े बाबा ? तब तो मुझे भाग जाने का अच्छा अवसर मिल सकेगा ?'

कांसटेबिल ने चाहा, कह दे—'वह उसे बूढ़े बाबा कहकर इस पवित्र सम्बोधन को कलुषित न करे। पुरुष तो 'आवारा' हो जाते हैं, किन्तु भले घर की लड़कियाँ भी जब इस प्रकार फिरने लगेंगी, तो क्या होगा ? राम ! राम ! उसे अपने अँगरेज़ सुपरेन्टेन्डेन्ट की बात याद आई। एक दिन उसने ऐसे ही मामले में कहा था—हिन्दुस्तानी औरत घर से भागना खूब जानती है। हमारे देश की-सी आज़ादी उन्हें भी मिल जाय, तो यह सब बन्द हो सकता है।'

'और स्त्रियाँ आज़ादी पाकर दिन-रात पुरुषों के साथ.... छिः !' बूढ़ा कांसटेबिल जैसे बिलबिला उठा। वह उठकर बैठ गया—'घोर नैतिक पतन—आचरण-भ्रष्टा !'

दमयंती फिर बोल उठी—'क्यों कहा था न ? सरकारी ड्यूटी पर हो। सो नहीं सकते। मैं कहीं गायब हो गई, तो सीधे जेलखाने जाना होगा।' फिर शीघ्रता से विषय-परिवर्तित करती हुई कह उठी—'हिन्दू हो न बूढ़े बाबा ? क्या नाम है तुम्हारा ?'

कांसटेबिल मन-ही-मन घुटकर और उसकी ओर से विरक्ति समेटकर भी मौन नहीं रह सका, खीझ में भरकर बोला—'रनवीरसिंह।'

'रनवीरसिंह !' कहकर दमयंती जोर से हँसने लगी—

'ठाकुर हो बूढ़े बाबा, फिर भी रणवीरसिंह। देश में जब-जब स्वतन्त्रता का रण हुआ था, तो कितने भाइयों का वध किया था ? कितनों को फाँसी पर लटकवाया था ? कितनी अबलाओं को विधवा बनाया था ? कितने घर जलाए और लूटे थे ? वह सब भूले तो नहीं हो, बाबा ? भूलना मत। उसका पुरस्कार भी, अब स्वतंत्र भारत में मिलेगा। अच्छा, एक बात और बताओ, सन् ४२ में तुम कहाँ थे ?'

रणवीरसिंह के मन में आया कि दमयंती का गला घोंट दे या उसे चलती गाड़ी से नीचे फेंक दे। बहुत होगा, नौकरी ही तो जायगी। अपनी जवानी से वह पिसता आ रहा है और अब कहीं कुल मिलाकर पैंतालीस रुपए पाता है। किन्तु अपने स्थान से उठने का भी उसे साहस नहीं हुआ। उससे वह पराभूत होता जा रहा है। उसकी सारी कठोरता इस समय न-जाने कहाँ विलीन हो गई ! कुछ क्षण चुप रहकर और अपने को साधकर उसने कहा—'पुलिस का तो नाम बदनाम है। किसी के साथ नेकी करो, तो भी वह चार गालियाँ देता है। और तुम्हें बूढ़ों का मज़ाक़ बनाने में क्या मिलेगा ? कौन किसके साथ क्या करता है, इसे क्या सभी लोग जानते हैं ?

दमयंती ने बूढ़े रणवीरसिंह की वाणी में कातरता और असमर्थता की करुणा उमड़ती जानकर परिहास करने की भावना को दूर ढकेलते हुए आत्मीयता के स्वर में कहा-'पुलिस मे भले लोग भी होते हैं, बूढ़े बाबा। मैं जानती हूँ। तुम्हे

कदाचित् मेरी कहानी नहीं मालूम। मैं उन्हीं की सहायता से दंगाइयों के हाथ से बचकर निकल सकी थी। आजकल तो हिन्दू-मुसलमानों की साम्प्रदायिक मनोवृत्ति ने देश को और गाढ़े-अन्धकार में घसीट रक्खा है। मैंने उन गुन्डों को देखा है। अपनी आँखों उन्हें खून करते.......आग लगाते....... बलात्कार.......सभी कुछ करते देखा है।'

रणवीर सिंह ध्यान से सुनने लगा। दमयंती कहती रही—'वह एक बड़ी भयानक महाप्रलय की रात थी, हमारे भाग्य में, जिसकी बीभत्सता से मैं आज भी कराह उठती हूँ। किन्तु उसी घटना से यह भी सीख सकी हूँ कि जीवन सचमुच पानी का बुलबुला-मात्र है। पल-भर में नाश होकर धू-धू कर जल उठता है। शरीर का सौंदर्य, हृदय का लावण्य, मन की सुकुमारता, भावों की कोमलता और नेत्रों की मादकता, न-जाने कहाँ तिरोहित होकर रह जाती है और शेष रह जाता है तड़पता, आहत, कराहता हुआ निर्जीव-सा प्राणी; अपने जीवन की सारी कड़ुवाहट, सारी भयानकता समेटे, लहू-लुहान आँखें रँगी, जबान बाहर निकली, सर....।'

रणवीरसिंह ने एकाएक हाथ बढ़ाकर दमयंती का मुँह बन्द कर दिया। डब्बे में जल रही बत्ती के उस क्षीण प्रकाश में यह स्पष्ट था कि उसे जिन विचारों ने कातर और निर्बल बना दिया था, वे सघन होकर उसके सिमटे मुख पर छाया बिखेर चुके थे। उसने कहा—'रहने दो, और नहीं सुनना चाहता।'

दमयंती विचलित नहीं हुई। उसके मुख पर अब नारी-शक्ति की सारी कठोरता बिखर चुकी थी। उसके नेत्र आग बरसा रहे थे। उसका हाथ अपने मुख से हटाकर वह बोली-'सुनो न बाबा, सभी कुछ सुनना होगा तुम्हें। और तुम तो हिन्दू हो—दया और ममता के सागर, बड़ी जल्दी द्रवित हो जाते हो? तुम तो मेरा उद्धार करने के लिए साथ किए गए हो न? मैं एक मुसलमान युवक के साथ इलाहाबाद से चली थी। बंबई जा रही थी। उसका कुछ कार्य था यहाँ, तभी हम लोग इधर से आए, नहीं तो उधर से ही चले जाते। तब तुम क्या करते? मेरी रक्षा कर पाते क्या? और जीवन का संगीत तो सुनो। एक निराश्रिता लड़की क्या अपने यौवन पर आँसू बहाकर सन्यासिनी बन जाए? वह क्या सुख-भोग···?'

तभी गाड़ी अचानक झटका खाकर रुक गई। दोनों खिड़की के बाहर सर निकालकर देखने लगे। कोई कुछ नहीं बोला। डब्बे के अन्य यात्री अब भी पड़े करवटें बदल रहे थे। स्टेशन अभी दूर था। उसकी लाल बत्तियाँ दिखाई पड़ने लगी थीं। दमयंती ने जैसे गाड़ी रुकने के साथ ही अपनी कहानी अधूरी रह जाने पर खीझ का भाव बनाकर रणवीरसिंह की ओर देखा, फिर बोली—'बड़ी गर्मी लग रही है। गाड़ी रुकने का पता लगाओ न बाबा?'

रणवीरसिंह अपनी तत्परता दिखाने के लिए खिड़की की

और बढ़ा ही था कि सीठी देकर गाड़ी पीछे चलने लगी। उसने कुछ क्षण खड़े रहकर बाहर फैले हुए निस्तब्ध अंधकार में झाँककर कहा—'स्टेशन तो दूर है अभी। कोई घटना हुई है। किसी ने जंजीर खींची होगी या फिर""।' कहकर वह रुक गया।

'या फिर क्या ?' दमयंती पूछ उठी।

'कोई कट गया होगा। पता लगाऊँगा उतरकर।'

दमयंती जैसे सहमकर रह गई।

रणवीरसिंह ने उसे कम्पित होते देख लिया था, पूछा—'डर गई क्या ? तुमने तो जो कुछ देखा है, उससे अधिक भयावह यह घटना नहीं होगी ?'

'किन्तु आत्मघात करना बड़ा कठिन है, यह मैं जानती हूँ। किसी को मार डालना, उसके शरीर के टुकड़े-टुकड़े कर देना सरल काम है। अपनी हत्या स्वयं करना""! नहीं बाबा, यह दुरूह है। आत्मघात करने की शक्ति सब में नहीं होती। मैंने कई प्रयत्न किए-विष मँगाया, पर पीने का साहस नहीं हुआ। पत्थर बाँधकर नदी में डूबना चाहा, उसमें भी असफल रही। गले में रस्सी बाँधकर लटकना चाहा और यहाँ तक कि चोरी से रिवाल्वर तक ले आकर अपने सीने पर रख लिया, किन्तु मर नहीं सकी। सारा मोह उमड़ आया। दुखी और त्रस्त, पीड़ित और अकिंचन होकर भी यह संसार बड़ा आकर्षक लगा।' वह उठकर रणवीरसिंह के निकट आ गई,

फिर पूछ उठी—"अच्छा, कौन मरा होगा, बाबा, बता सकते हो ?'

'कोई स्त्री होगी।' कहकर वह उसकी बातों को अपने चारों ओर मँडराता जानकर उनमें डूबने-उतराने लगा।

गाड़ी रुकी थी। दमयंती ने उसे हिलाते हुए कहा—'जाओ बाबा, मैं देखने के लिये व्याकुल हूँ। कौन स्त्री इस प्रकार मरने का साहस कर सकती है ?'

रणवीर सिंह उतर गया। दमयंती डिब्बे ही में बैठे-बैठे निकट से हो-हल्ला मचाते हुए गाड़ी के मुसाफिरों का जाना देखती रही। सभी कुछ-न-कुछ कह रहे थे। वह उनके शब्दों को जैसे गले से नीचे उतारती खड़ी रही।

कुछ क्षण बाद रणवीर सिंह पत्थर के टुकड़ों पर तेजी से चलता, अपने को सँभालता हुआ आकर बोला—'आओ दमयंती, जल्दी करो। गाड़ी और नहीं रुकेगी।'

दमयंती अपने सैन्डिल खटपट करती उसके पीछे-पीछे चल दी। वह रणवीर सिंह से पूछ लेना चाहती थी कि किसने आत्महत्या की है किन्तु उसके ओंठ जैसे खुल नहीं सके। इस समय उसकी वाक्-पटुता जड़ होकर रह गई।

घटना-स्थल पर पहुँचकर उसने जो कुछ देखा, उससे वह मर्माहत होकर कराह उठी। एक युवती कट मरी थी। शरीर के दो भाग हो गए थे। सर आधा अलग था। दो पटरियों के बीच लहू में लथपथ वह इन्जन के सामने, तीव्र प्रकाश मे

पड़ी थी। गाड़ी के अन्य छोटे-बड़े कर्मचारी चारों ओर खड़े थे। यात्रियों का समूह जैसे उमँडता आ रहा था। दमयंती मानो दबकर रह गई। उसका दम घुटने लगा। उसने रणवीरसिंह का हाथ पकड़कर कहा—'चलो बाबा, देख लिया।'

चलते-चलते उसने सुना। गार्ड कह रहा था—'लिखा-पढ़ी समाप्त करो जल्दी, गाड़ी लेट हो रही है। न-जाने कहाँ से मरने आ गई? पता-ठिकाना तो है नहीं कुछ, फेंक दो एक किनारे उठाकर।'

दमयंती सहम गई। रणवीरसिंह का हाथ उसने कसकर पकड़ लिया और कह उठी—'ऐसी मृत्यु से क्या मिल गया इसको? जानवर खा जाएँगे।'

रणवीरसिंह उसे सहमते देखकर बोला-'घबरा क्यों गई? तुम तो बहादुर हो!' फिर कुछ रुककर बोला-'अपनी-अपनी करनी है दमयंती! उसके भाग्य में यही सब लिखा होगा। घर से लड़कर आई होगी, या फिर किसी के प्रेम में…।' आगे वह नहीं बोला। जैसे किसी ने उसका गला दाब लिया हो।

डिब्बे में आकर दोनों बैठ गए। गाड़ी चलने लगी।

दमयंती अपने मन में उठनेवाले विचारों के प्रवाह में बहती हुई डूब-उतरा रही थी। वह अपनी इस डावाँडोल और विषम परिस्थिति को हर प्रकार से सुलझाने का प्रयत्न करते हुए भी अपने को अकिन्चन और निरावलंब ही जान पाती थी। यौवन के मद में उसने नारी के आचरण तक को एक भुलावा

मान रखा था, किन्तु अपनी समस्त संज्ञा और स्फूर्ति को तब वह एक बिन्दु पर ही केन्द्रीभूत करके न तो उससे नवोत्साह का सकेत पा सकती थी और न अपनी जीवन-नौका को एक किनारे लाने का प्रयत्न कर पाती थी। बीच सागर में बढ़ता हुआ पोत जैसे अपने बहाव के साथ, थपेड़ों के सहारे कहीं भी चला जाता है और उसका मल्लाह इतना बेख़बर रहता है कि उसे भटकते रहने में ही सुख मिलने लगता है।

रणवीर सिंह ने उसके मुख की ओर बिना देखे पूछा—'चुप क्यों हो गईं दमयंती ? क्या तुम भी भावुक बन .जाती हो कभी-कभी ?'

दमयंती के नेत्रों के सामने अब भी उस युवती का शव जैसे ख़ून में भीगा पड़ा था। लाहौर में अपने परिवार को कटते देखकर भी वह उस सब को भुला चुकी थी। वह एक क्षण को भी उस सब का स्मरण नहीं कर सकी। किन्तु वह जितना इस घटना को विस्मृत करना चाहती थी, उतनी ही वह उसे और त्रस्त कर रही थी, मानो शरीर के टुकड़े छटपटा रहे हों और उनकी ओर घूर रहे हों। मृत्यु का सन्नाटा उसे अपने चारों ओर बिखरा-सा जान पड़ने लगा।

रणवीरसिंह ने आगे कहा—'हाँ, तो अपनी कहानी सुनाओ दमयंती। यह सब तो चला ही करता है संसार में। आत्म-हत्या करना दुर्बलता है। आदमी जीने के लिये आया है; संघर्ष करने के लिये। मैं तुमसे बहुत खुश हूँ।'

दमयंती जैसे अपने ऊपर रखा भार दूर करते हुए कहने लगी—'यही ठीक है बाबा। मैं भावुक नहीं बनना चाहती। मुझे अपने प्राणों से मोह है, अपने जीवन से और अपने शरीर से भी। आकाश में उड़नेवाले पक्षी की भाँति मैं स्वतन्त्र हूँ बाबा। जो चाहूँ सो करूँ।'

तभी एक मुसलमान के साथ तुम भागी थीं ? हिंदू लड़की होकर, छिः.....! तुम्हें जाति का, समाज का....। छोड़ो वह सब। तुमसे कहना व्यर्थ है। हाँ, फिर क्या हुआ ?'

स्टेशन आया, फिर पीछे छूट गया। उषा की लालिमा पूर्व मे अंधकार के बीच आ बैठी।

दमयंती जैसे चिहुँक उठी बोली-'कचहरी के सारे लोग मुझसे यही कहलाना चाहते थे किन्तु मैं तो स्वेच्छा से आई थी। उस दिन शहर में थिएटर हो रहा था। वहाँ यदि मैं न जाती, तो कोई मुझे जान भी नहीं पाता। आजकल तो हिन्दू भड़क उठे हैं। बहुत त्रस्त किए गए हैं बेचारे। मैं जब भीड़ से घिरी खड़ी थी, तो न जाने कितने लोग चिल्ला-चिल्लाकर कह रहे थे कि वे मुझे अपने घर रख लेने को तैयार हैं ! उनमे सभी गुंडे, भद्दी सूरतवाले गन्दे और आवारा लोग थे। वे बेचारे मेरा भार क्या उठा पाते ? उनके ऊपर अब भी हँसी आती है। मैं एक स्थान पर बँधकर रहना नहीं चाहती। मेरे पीछे लोग दो दिन तक पड़े रहे। पुलिस में रही, कचहरी आई, बड़ा मजा रहा। पुरुष को समझने का अवसर भली भाँति मिला।

जो सहानुभूति दिखाने आता, वही वासना का नशा आँखों में लेकर मेरा मुख निहारता रहता। फिर कुछ देर तक वह मौन रहने के बाद बोली—'और बाबा, वह मुसलमान अब भी बन्द है ?'

रणवीरसिंह ने कहा—'उसे जेल में जाना होगा। लड़की भगाना अपराध है।'

'किन्तु मैं उसे निर्दोष बता चुकी हूँ, वह छूट जायगा।'

वृद्ध जैसे उबलकर रह गया, झुँझलाकर बोला—'तुम्हारी ऐसी ललनाएँ हमारे देश का नाम उज्ज्वल करती हैं ! छिः ! तुम पतिता हो दमयंती। समाज तुम्हारा बहिष्कार कर देगा। तुम मनवाले पुरुषों की वासना-तृप्ति का साधन बनकर दो-चार वर्ष के बाद वेश्यावृत्ति अपना-लोगी। नहीं तो कोई तुम्हारी हत्या कर डालेगा। कहे देता हूँ, तुम नरक में जा रही हो, दमयंती।' कहते-कहते उसकी साँस तीव्र गति से चलने लगी और जो कठोरता उसके मुँख पर व्याप्त हो गई, उसे देखकर दमयंती को और कुछ कहने का साहस नहीं हुआ। वह दीवार के सहारे आँखें मूँदकर बैठ गया।

दमयंती पूर्व में प्रभात की किरणें फूटती देखकर जैसे अपने जीवन-प्रभात का स्वप्न देखती, मौन पर अस्थिर होकर उसी ओर देखती रही। रणवीरसिंह के वाक्य विष-भरे बाणों की भांति उसे बेध गए थे, जिसकी पीड़ा से वह छटपटा रही थी।

दोनों कुछ नहीं बोले। जैसे एक अभेद्य दीवार बीच में खड़ी होकर किसी को कुछ कहने का अवसर न दे रही हो।

दोपहर के बाद कहीं गाड़ी इलाहाबाद पहुँची। डब्बों से उतरकर दोनों प्लेटफार्म पर खड़े हो गए। एक सिपाही के साथ एक युवती को देखकर कौतूहलता का वातावरण पल भर में चारों ओर से उमड़ पड़ा। लोग परस्पर कानाफूसी करने लगे।

रणवीरसिंह ने पूछा—'कहाँ हैं तुम्हारे सम्बन्धी दमयंती ? उन्हें सौंपकर मैं इसी दूसरी गाड़ी से वापस लौट जाऊँ।'

दमयंती मुस्कराई—'सम्बन्धी ! संसार में मेरा कोई अपना नहीं है, बाबा ! अब तुम जा सकते हो। मेरा मार्ग खुला है। जिधर मन चाहेगा, चल दूँगी।'

रणवीरसिंह गरज उठा—'तो 'महिला-समाज' में चलना होगा दमयंती। इस प्रकार और उच्छृंखल बनने के लिये मैं तुम्हें नहीं छोड़ सकता। फिर वहाँ से तुम भले ही चली जाना। मैं अपने ऊपर यह कलंक न लगने दूँगा।'

दमयंती को बाध्य होकर जाना पड़ा। एक ताँगा करके दोनों महिला-समाज-मंदिर जा पहुँचे। व्यवस्थापक से सारी कहानी सुनाकर और दमयंती को वहीं रखने की प्रार्थना कर जब वह चलने लगा, तो दमयंती ने कहा—'बूढ़े बाबा, तुम्हारा श्राप भली-भाँति स्मरण है। उसे आजीवन भुला भी नहीं सकूँगी।

एक बार उबार चुके हो, फिर यदि कहीं फँस जाऊँ, तो दुत्कार मत देना। तुम्हें ही बुलाऊँगी।'

रणवीरसिंह मूर्तिवत् कुछ क्षण खड़ा रहा, फिर दमयंती की ओर बिना देखे, बिना कुछ उत्तर दिये चुपचाप चल दिया। दमयंती खड़ी-खड़ी उसे देखती रही।

# तीन मुसाफ़िर

बाहर मूसलाधार वर्षा होने लगी थी।

ताँगे से उतरने और कुली के सर पर सामान लदवाने में मिस चटर्जी और उन्हें पहुँचाने आनेवाले पार्टी के लोग पानी से लथपथ हो गये। जाना ज़रूरी था। पार्टी का काम ठहरा। नहीं तो मिस चटर्जी इस वर्षा में घर से बाहर नहीं निकलतीं। उन्होंने नाक-भौं सिकोड़कर और नीचे खिसक आनेवाले चश्मे को ऊपर चढ़ाते हुए भरद्वाज से कहा—'कैसा है जी तुम्हारे यहाँ का स्टेशन? पानी से कोई बचाव नहीं? सारे इक्के, ताँगे और रिक्शेवाले आँधी-पानी में खुले में ही खड़े रहते हैं? सवारियों की जो दशा होती है वह हम जान रहे हैं। और गाड़ी आयेगी दूसरे प्लेटफ़ार्म पर जहाँ 'शेड' भी नहीं है।'

कौल ताँगे से उतरते ही टिकट घर की ओर बढ़ गया था। अब अपना कुर्ता और पाजामा झाड़ता हुआ बोला—'आज बुरी हालत हो गई। ऐसा पानी तो इस बार 'सीज़न' भर में नहीं बरसा।'

मिस चटर्जी कुछ कहने जा रही थीं। उनकी साड़ी काफ़ी भीग गई थी, और कहीं-कहीं उनके शरीर से चिपक गई

थी सर के बालों में भरा हुआ पानी टप-टप कर चू पड़ता था। उनसे पहले दत्ता बोल उठा—'तुम चटर्जी वेटिङ्ग रूम में जाकर साड़ी बदल लो। नहीं तो ट्रेन में बैठने में तकलीफ होगी।'

ऐसी कुछ परेशानी मिस चटर्जी को भी अनुभव हो रही थी। वह वेटिङ्ग रूम में चली गईं।

गाड़ी आने का समय हो गया था और प्लेटफार्म पर मुसाफिरों की भीड़ बढ़ती जा रही थी। भरद्वाज बुक स्टाल से एक अँगरेज़ी की पुस्तक और 'फिल्म इंडिया' खरीद लाया। मिस चटर्जी हिन्दी लिखना-पढ़ना बहुत कम जानती हैं। इन लोगों का परस्पर विचार-विनिमय अँगरेज़ी में होता है। कभी-कभी मिस चटर्जी टूटी-फूटी हिन्दी भी बोल लेती हैं। यू॰ पी॰ में उन्हें रहकर पार्टी का काम करना है जहाँ हिन्दी ही बोली जाती है। इसलिये हिन्दी सीखने का प्रयत्न वे करने लगी हैं।

कौल 'फिल्म इन्डिया' के टाइटिल पेज पर दृष्टि गड़ाये किसी रंगीन चित्र को देखने लगा था और दत्ता अपनी पतलून की जेब में हाथ डाले सीटी बजाता टहलने लगा।

लाइन क्लियर का सिगनल दे दिया गया। पानी अब भी वैसे ही बरस रहा था। भरद्वाज सबसे अधिक भीगा था। वह सर्दी से काँप उठा।

वेटिङ्ग रूम से वैसे ही भीगे कपड़ों में मिस चटर्जी निकलीं। बोलीं—'अरे भूल गई थी। गाड़ी दूसरे प्लेटफार्म पर

आयेगी, और पानी तो बरस ही रहा है। फिर भीगना पड़ेगा। गाड़ी में ही कपड़े बदल लूँगी।'

सब ने इसका समर्थन किया।

जो सी० आई० डी० का आदमी अभी तक उनके पीछे लगा था, वह अपनी ड्यूटी समाप्त कर आगे के लिये उन्हें दूसरे के सुपुर्द कर लौट गया था। उसे मिस चटर्जी के साथ छाया की भाँति लगे रहना था। जब भरद्वाज बुकस्टाल पर गया था, उसके पीछे-पीछे वह भी जा खड़ा हुआ था। भरद्वाज ने कई रूसी पुस्तकों के अँगरेजी अनुवाद की प्रतियाँ माँगी थीं, उसने अपनी डायरी में यह नोट कर लिया था।

यू० पी० के पश्चिमी ज़िलों का दौरा समाप्त करने के बाद मिस चटर्जी यहाँ दो दिन के लिये भेजी गई थीं। भरद्वाज यहीं का रहनेवाला था। मिल के दफ्तर में क्लर्क था। दत्ता और कौल बाहर के थे। पर फ़िलहाल स्थायी रूप से गाँवों में दौरा करने और यहाँ की जानकारी प्राप्त करने के लिये भेजे गये थे।

मिस चटर्जी अब भी अपना धूप का काला चश्मा लगाये थीं। नाटा कद, दुबली-पतली और गोरा रंग। जब हँसती थीं तो सफ़ेद दाँत चमकने लगते थे। पान की वे शौकीन थीं, पर दाँतों की सफ़ाई रोज ब्रुश से करती थीं।

गाड़ी आने का घंटा बजा। मुसाफिर इसी इन्तज़ार में थे कि जब गाड़ी आकर ठहर जाय तो लाइन पार कर उसमें जा

धुसें। इस बरसते पानी में अभी से वहाँ खड़े रहना सम्भव भी नहीं था।

मिस चटर्जी ने कौल से टिकट लेकर पर्स में रख लिया। फिर गाड़ी आते ही दो छलाँग में सब के साथ लाइन पार कर वे सेकेन्ड क्लास में जा पहुँची। दो यात्री पहले से उसमें बैठे थे। तीसरी बर्थ पर मिस चटर्जी बैठ गईं। दत्ता ने बंगाली में कुछ कहा, जिसका उन्होंने बहुत हँसकर जवाब दिया। भरद्वाज और कौल उसे नहीं समझ सके।

भरद्वाज अपने मिल की यूनियन के बारे में कुछ कहना चाहता था कि गाड़ी ने सीटी दे दी। तीनों कम्पार्टमेन्ट से बाहर आ गये। गाड़ी चलने लगी तो मिस चटर्जी ने सबसे हाथ मिलाते हुए कोमल स्वर में कहा—'आप लोगों को मेरे कारण बड़ी तकलीफ उठानी पड़ी। इस बरसते पानी में''''।' उसका वाक्य पूरा होने के पूर्व ही चलती गाड़ी में सी० आई० डी० का आदमी भी घुस आया। मिस चटर्जी को एक ओर हट जाना पड़ा। भरद्वाज, दत्ता और कौल प्लेटफार्म पर खड़े हाथों से अपने रूमाल हिलाते रहे और मिस चटर्जी भी अपना रूमाल हिलाकर प्रत्युत्तर देती रहीं।

गाड़ी तेज रफ्तार से जा रही थी। सी० आई० डी० का आदमी चौथी बर्थ पर बैठ गया था।

पहले से सफर करनेवाले मुसाफिर जो पूरे डब्बे पर अधिकार जमाये हुए थे, कुछ परेशान से दिखाई पड़ने लगे। उनमें

से एक पूर्वी पंजाब का रहनेवाला था, जो लखपती व्यापारी था और विभाजन के बाद भी अपने व्यापार के लिये पाकिस्तान के कई चक्कर लगा चुका था। चोरी से भी वह कई बार वहाँ सामान भेज चुका था। पैरों के पास रक्खी अटैची पर उसका नाम लिखा था—बी० एल० सोंधी।

दूसरा मुसाफिर देहली से आ रहा था। वह सिविल सप्लाई विभाग में एक ऊँचे पद पर काम करता था। उसके रोब-दाब और साहबी लिबास से अफसरी टपकती थी। बातें करते समय वह सख्ती से पेश आता था, जैसे अपने जिम्मेदार पद का उसे बहुत ध्यान है। किन्तु उसके सम्पर्क में आने के बाद सहज ही जाना जा सकता था कि वह कितना कोमल हृदय व्यक्ति है और उसके मन में दया का सागर है। क्लीन-शेव, आँखों पर चश्मा, ग्लिसरीन से चिपकाये हुए बाल, सफेद मक्खन जीन की पैन्ट पर हल्के पीले रंग की बुशशर्ट उसे बहुत जँचती थी। वे अपना 'पोर्टफोलियो' खोले डिपार्टमेन्ट के कुछ कागज़ देख रहे थे। सरकार ने उन्हें दिल्ली भेजा था। कुछ कमिश्नरों की बैठक में भी वे सम्मिलित हुए थे। सरकार की खाद्य समस्या को प्रान्त भर में समझाने और संचालन करने-वाले वही थे। सप्लाई मिनिस्टर को पल-पल पर उन्हें फोन करना पड़ता था। मिस चटर्जी ने कनखियों से उनके ठाठ-बाठ को निहारा। पोर्टफोलियो पर उनका नाम लिखा था—एन० पी० खन्ना।

दोनों मुसाफ़िर मुरादाबाद से एक ही कम्पार्टमेन्ट में चले आ रहे थे। बीच-बीच में दोनों में बातें हो जाया करती थीं, पर मित्रता नहीं हो सकी थी। 'बिज़नेस मैगनेट' के रूप में अपना परिचय देते हुए सोंधी ने खन्ना पर अपना सिक्का जमाना चाहा था, पर खन्ना अपने पद के कारण अब तक इस प्रकार के न-जाने कितने 'मैगनेटों' से नाक रगड़वा चुका था। उसने सोंधी से मिलकर कोई विशेष ख़ुशी प्रकट नहीं की। हाँ, उसे सप्लाई का उच्च अफ़सर जानकर सोंधी अवश्य ही बीच-बीच में अपना जाल फेंकता रहा। कहीं तिकड़म चल गई तो इस सूबे से भी लाखों रुपये खींच लेगा।

सी० आई० डी० का आदमी चाहता था कि इस मौन वातावरण को दूर कर किसी ऐसे विषय पर बात छेड़ी जाय उसमें मिस चटर्जी के साथ ही खन्ना और सोंधी भी भाग ले सकें। अतः उसे आजकल प्रत्येक सार्वजनिक स्थानों पर होनेवाली चर्चा का सहारा लेना पड़ा—कोरिया की लड़ाई, टन्डन जी का कांग्रेस अध्यक्ष चुना जाना, काश्मीर-समस्या, रूस और अमेरिकन युद्ध में भारत का रुख आदि ऐसे विषय थे जिन पर सभी क्षेत्रों में गरमागरम बहस हो जाना साधारण बात थी।

वर्षा अब कम हो गई थी। कभी-कभी हवा के साथ हल्की बौछार भीतर आ जाती थी। मिस चटर्जी ने अभी तक कपड़े नहीं बदले थे। सोचा, गाड़ी में हवा लगने से सूख जायँगे।

कहीं वर्षा न रुकी तो जहाँ उतरना है वहाँ फिर भीगना पड़ेगा। और उसके पास इतनी साड़ियाँ कहाँ हैं, जो बार-बार बदलती रहेगी ?

सी० आई० डी० के आदमी ने उठकर खिड़की बन्द कर दी। अन्दर पंखा चल रहा था। मिस चटर्जी से बोला—'आपके कपड़े भीगे लगते हैं। आप उन्हें बदल डालिए न ?'

'जी, मैं ऐसे ही ठीक हूँ।' कुछ कुढ़ कर मिस चटर्जी ने उत्तर दिया। यह उसके पीछे क्यों पड़ा है ? वह अपने स्वभाव के अनुसार सफ़र में बहुत कम बोलती थी। पार्टी की कोई बात 'डिस्क्लोज़' न हो जाय, इसका ध्यान उसे पग-पग पर रखना पड़ता था।

सी० आई० डी० के आदमी को जब और कोई उपाय नहीं सूझा तो अपना अख़बार खोलकर पढ़ने का बहाना करने लगा। सोचा, सोंधी या खन्ना में से कोई भी अगर अख़बार माँगेगा तो वह वार्ता प्रारम्भ कर देगा। उसे यह सूनापन बड़ा मनहूस लग रहा था। पर जब किसी ने भी नहीं माँगा तो खीझ कर उसने स्वयं ही सोंधी की ओर अख़बार बढ़ाते हुए कहा—'आपने पढ़ा, सरकार 'ब्लैकमेलर्स' को नज़रबन्द करेगी ?'

खन्ना और सोंधी दोनों का इस समाचार से सीधा सम्बन्ध था। सोंधी जहाँ स्वयं एक 'ब्लैकमेलर' था वहीं खन्ना सिविल सप्लाई का उच्च अफ़सर था, जिसे इन ब्लैकमेलरों की खोज

कर नज़रबन्द कराना था। दोनो ने इस संवाद पर अपनी-अपनी विचारधारा के अनुसार सोचा।

अपने पोर्टफोलियो में कागज़ बन्द करता हुआ खन्ना बोला-'यह सब ग़द्दारी है। स्वतन्त्र देश में चोर बाज़ारी करने के मानी हैं कि अपनी ही सरकार को कमज़ोर बनाना और अपने ही भाइयों को भूखों मारना। सरकार तो इनके लिये फाँसी की सज़ा तजवीज़ करे।'

सोंधी 'फाँसी' शब्द से काँप कर रह गया। तब तो उसे भी फाँसी होगी। उसने खन्ना की ओर भयत्रस्त निगाहों से देखा, फिर सहमे स्वर में कहा—'आप ठीक कहते हैं खन्ना साहब। उन्हें फाँसी ही होनी चाहिये, पर उन सरकारी अफ़सरों को कौन-सी सज़ा मिलनी चाहिये जो राज्य-भक्ति की शपथ लेकर इन ब्लैकमेलरों से लम्बी-लम्बी रक़में रिश्वत में हड़प कर जाते है। अगर भूलता नहीं तो पेपर में एक दिन निकला था कि बम्बई के सप्लाई डिपार्टमेन्ट के अफ़सरों ने तीन हज़ार गैलन पेट्रोल का कूपन चोरी से बेचकर लाखों रुपए कमा लिये। कागज़ में उनका खर्चा 'ग्रो मोर फूड' आन्दोलन में व्यय हुआ दिखाया गया था। इसे शायद आप ग़द्दारी नहीं कहेंगे? यह तो गलती से हो गया होगा?'

खन्ना तिलमिला कर रह गया। उसका मुख तमतमा उठा। एक ब्लैकमेलर जो उसके पास बैठा है इस प्रकार उस पर कीचड़ उछाल रहा है। पर बात सोंधी ने सच कही थी

जिसका अर्थ था कि तुम चोर हो तो हम गँठकटे। दोनों मिल कर भाई-भाई की तरह क्यों न रहें ? तुम रिश्वत लो और हम चोर-बाज़ारी करें। न तुम मेरी कहो और न मैं तुम्हारी। दोनों में से कोई देश का दुश्मन नहीं है। इसे गद्दारी नहीं कहते। गद्दारी तो साम्यवादी करते हैं जो लूट-मार और तोड़-फोड़ कर रहे हैं। हम लोग पैसा लगाते हैं इसलिये कि उससे फ़ायदा उठायें और तुम जब हमारा काम कर देते हो, हमें चार पैसे दिलाते हो तो एक पैसा तुम्हें भी मिल जाता है। यह तो कोई ऐसी बात नहीं कि सरकार को हम किसी प्रकार लूटना चाहते हों। हम तो पब्लिक को""""?

सी० आई० डी० का आदमी फूस में चिनगारी डाल कर मुस्करा रहा था।

मिस चटर्जी ने अपने को बहुत रोकना चाहा, पर रोक न सकी। शुद्ध अंग्रेज़ी में बोली—'माफ़ कीजियेगा, मैं भी इस विषय में दिलचस्पी ले रही हूँ। मेरा तो ख्याल है कि मौजूदा सामाजिक व्यवस्था में बिना आमूल परिवर्तन किये ये बुराइयाँ दूर नहीं हो सकतीं। छोटे से लेकर बड़े अनेक सरकारी अफ़सर रिश्वत और फ़र्ज़ी दौरे के भत्तों से अपनी जेबें भर रहे हैं और बिज़नेसमैन ब्लैक मार्केट से तिजोरियाँ। दोनों एक हैं। और उधर सरकार पूँजीपतियों का साथ दे रही है। जनता में तीव्र असंतोष भरा है। 'क्लास वार' ज़रूर होगी! बंबई में मिल मज़दूरों की हड़ताल चल रही है। फ़ायरिंग होती है। ग्वालियर

में छात्रों के जुलूस पर गोली चलायी गई। मैं तो समझती हूँ कि सरकार अपना कर्तव्य नहीं निभा रही है। इसीलिये सभी परेशान हैं। लड़ाई को बीते पाँच साल हो गये हैं, पर चीजें उन काल से भी अधिक महँगी होती जा रही हैं। क्या होगा, समझ में नहीं आता ?'

खन्ना और सोंधी इस दुबली-पतली युवती के भीतर छिपी हुई आग से जैसे झुलस उठे। उन्हें यह समझते देर न लगी कि मिस चटर्जी कैसे विचारों की हैं ?

सी० आई० डी० के आदमी ने सामने से अखबार हटा कर जैसे उसे प्रोत्साहन देते हुए कहा—'आप तो साम्यवादी विचारों की लगती हैं। इधर कोरिया की लड़ाई में हिन्दुस्तान ने रूस का जितना पक्ष लिया है, उतना 'कामनवेल्थ' में रह कर भी ब्रिटेन और अमेरिका का नहीं। पर मैं सोचता हूँ कि हिन्दुस्तान तो एक धर्म-प्राण देश है। यहाँ साम्यवाद पनप भी सकेगा ? ईश्वर और धर्म का पग-पग पर राज्य है और आप लोग उन दोनों को निकाल चुकी हैं।'

मिस चटर्जी से जब कोई उत्तर देते नहीं बन पड़ा, तो बोलीं-'हम लोग जिस प्रकार का निर्माण चाहते हैं, वह 'साइंटिफिक' प्रणाली पर आधारित है और साइंस में ईश्वर का कोई स्थान नहीं है। वहाँ तो 'पावर' ही पर सब कुछ निर्भर है। 'नेचर' भी इसीलिये स्वयं-चालित मानी गयी है। लेकिन मैं यह जानना चाहती हूँ कि आप लोग साम्यवाद का इतना संकु-

चित रूप क्यों लेते हैं? हिन्दुस्तान में क्या ईश्वर को न माननेवाले लोग नहीं थे? नास्तिक शब्द का जन्म तो यहीं हुआ है। यह दूसरी बात रही कि नास्तिक कभी देश पर राज्य नहीं कर सके और धर्म के लिये तो मैं कहूँगी कि एक मानव-धर्म का संदेश गांधी जी ने हमें सिखाया है। हमारा साम्यवाद भी उसी मानव-धर्म का पोषक है। सब मनुष्य समान हैं, किन्तु जीविका का साधन अपनी योग्यता पर ही पा सकते हैं। गरीब मजदूरों, किसानों, मास्टरों, क्लर्कों और मध्यवर्ग के अन्य लोगों का शोषण रोकने के लिये और मनुष्य-सा जीवन बिताने के लिये यदि हम आवाज उठायें तो आप लोग उसे साम्यवाद कहने लगते हैं। पर वह कोई भयंकर वस्तु तो नहीं है? आपके इसी धर्म-प्राण देश में राजा अपनी प्रजा को पुत्र के समान मानता था और जिस राज्य की प्रजा दुखी रहती है, कहा गया है, उस राजा को नरक मिलता है।'

मिस चटर्जी की बात से खन्ना बहुत प्रभावित हुआ। उसे उसकी वाक्शक्ति गजब की लगी। और सबसे बड़ी बात उसकी समझ में यह आई कि कितनी स्पष्टता से उसने साम्यवाद समझा दिया। साम्यवाद के नाम से ही सोंधी चौंक पड़ते थे। उसने कुछ कहने के लिये मुँह खोला ही था कि सी० आई० डी० का आदमी सँभलकर बैठता हुआ कह उठा—'और यह तोड़-फोड़ तथा लूट-मार की हिंसात्मक कार्यवाहियाँ जिनमें सैकड़ों निरीह व्यक्तियों के जीवन जाने के सा०

ही सरकार का करोड़ों रुपए नुक़सान होता है, साम्यवादी ऐसा क्यों करते हैं ?'

मिस चटर्जी के कपोल लाल हो गये, क्रोध से तमतमा तो उठी, पर अपने ऊपर नियंत्रण कर संयत स्वर में बोली—'वे गद्दार हैं मिस्टर ! ऐसे लोगों से हमारा कोई भी सम्बन्ध नही है। हम अपनी सरकार को कमजोर नहीं बनाते। यह तो 'ब्लैकमेलर्स' और 'रिश्वतखोर' उसकी जड खोद रहे है। ग़रीबों का ख़ून चूसते हैं और मुस्कराते हैं। मैं न्याय की लड़ाई में विश्वास करती हूँ। जनमत से हम सरकार बदल सकते हैं। मैं उन्हीं विचारों का प्रचार करती हूँ। किसी व्यक्ति विशेष से मेरा कोई द्वेष नहीं। पर राज्य-प्रणाली में सुधार होना आवश्यक है।'

इस बार खन्ना से चुप नहीं रहा गया, उत्साहित होकर बोल उठे—'ठीक तो है, मैं तो आपसे बिल्कुल सहमत हूँ।'

'और मैं एकदम नहीं' सोंधी खीझे स्वर में रुखाई से बोल पड़े।

अगले जिस स्टेशन पर ट्रेन रुकनेवाली थी, वहीं तक का मिस चटर्जी के पास टिकट था। सी० आई० डी० के आदमी ने फ़ोन कर उस स्टेशन पर पुलिस को सूचना दे दी थी। मिस चटर्जी को वह गिरफ्तार कराना चाहता था, अभियोग क्या था, यह तो वह भी नहीं जानता था, पर डिपार्टमेन्ट से साम्य-वादियों की कार्यवाहियों पर निगाह रखने का आदेश था।

उसी के पालन करने में वह कुछ लोगों को गिरफ्तार करा के अपना नाम कमाना चाहता था।

स्टेशन पर गाड़ी रुकते-रुकते सादी पोशाक में एक व्यक्ति कम्पार्टमेन्ट में घुस आया। खन्ना ने कहा—'आज पुलिस के इतने आदमी क्यों नज़र आ रहे हैं?'

मिस चटर्जी मुस्कराकर बोलीं—'कोई ब्लैकमेलर' ट्रेन में चल रहा होगा। गवर्नमेन्ट का नया आर्डिनेंस अब तो उनके पीछे भूत की तरह लगा है।'

सौंधी इतना घबड़ा गया कि उसे पसीना आ गया। उसने इधर हवाई जहाज से कुछ सामान चोरी से पाकिस्तान भेजा था और उसके बाद ही वह इधर चला आया था। कहीं वह सामान पकड़ा तो नहीं गया है, यही वह सोच रहा था? उसका प्लेटफार्म की ओर देखने का साहस नहीं हो रहा था।

जो नया आदमी कम्पार्टमेन्ट में घुसा था, उसने खिड़की के बाहर सर निकाल कर कुछ संकेत कर दिया, जिसे सौंधी ने देख लिया था। पल-भर में पुलिस के सिपाही उस कम्पार्टमेन्ट के चारो ओर बिखर गये। मिस चटर्जी को इस स्टेशन पर नहीं उतरना था। लखनऊ में आगे के लिये टिकट बनवा लेती। अपनी यात्रा में वह यही करती थी।

सी० आई० डी० के नये साथी ने जो सूचना पाकर तुरन्त पुलिस दल के साथ आ गया था, सौंधी को बार-बार पसीना

पोछते और घबड़ाया हुआ देखकर पूछा—'आपकी तबीयत ठीक नहीं है क्या ? अभी तो वर्षा रुकी है। हम लोग ठंड से काँप रहे हैं और आपके पसीना निकल रहा है ?'

सोंधी से कुछ उत्तर देते नहीं बन पड़ा। अटकते हुए इतना ही कह सके—'मैं तो.......मैं तो........।' वे प्रायः अर्द्धमूर्च्छित अवस्था में हो गये।

खन्ना को स्थिति समझते देर नहीं लगी, किन्तु वे यह नहीं निश्चय कर पाये कि पुलिस और सी० आई० डी० का आदमी मिस चटर्जी या सोंधी किस की तलाश में है। एक 'ब्लैकमेलर' है, तो दूसरा साम्यवादी। सरकार की दृष्टि और कानून में दोनो संदिग्ध हैं। पर वे स्वयं भी सरकारी दृष्टि में कितने संदिग्ध हो सकते हैं, इसे वे भूल गये। वे क्या पवित्र हृदय हैं ? वे तो राज्य-भक्ति की शपथ लेकर भी.......? उनके भीतर द्वन्द्व मचने लगा।

सी० आई० डी० का आदमी मिस चटर्जी के उतरने की प्रतीक्षा करता रहा। गाड़ी छूटने की सीठी हो गई, पर वह नहीं उतरी। उसे लगा कि इस युवती ने उसे चकमा दिया है। जाना उसे कहीं और है, और टिकट कहीं और का लिया है। वह उससे कुछ कहे कि सोंधी की ओर सब का ध्यान एकाएक आकर्षित हो गया। गाड़ी चल दी और नया व्यक्ति भी उसी में बैठा रह गया।

सोंधी की साँस जोर-जोर से चलने लगी थी और वह रुक-

रुककर कह रहा था—'मुझे 'हार्टट्रबल है।' आप लोग मेरी सहायता कीजिये। मेरे घर तार दे दीजिये।'

उसके इस अभिनय को मिस चटर्जी को छोड़कर सभी ताड़ गये। उसने लापरवाही से एकाध बार देखा, फिर पुस्तक पढ़ने लगी।

खन्ना ने सोंधी का परिचय दिया। मिस चटर्जी ने तब उन्हें ध्यान से देखा। मन-ही-मन उसे भी हँसी आई। 'ब्लैकमेलर' कितना कमजोर होता है? पुलिस के सिपाहियों की शकल से 'हार्टट्रबल पैदा हो गई।

खन्ना तब सोंधी को सांत्वना देते हुए बोले—'आप घबड़ा गए सोंधी साहब! पुलिस तो किसी और को पकड़ने आई थी, पर वह उससे भी चालाक निकला। ट्रेन में कहीं मिला नहीं। शायद पहले ही उतर गया। सरकार आप पर यूँ ही शक नहीं कर सकती?'

'और आप पर भी नहीं कर सकती, क्यों खन्ना साहब?' सी० आई० डी० का आदमी बोला—'आप तो खुलेआम साम्यवाद का समर्थन करते हैं, जब कि आप उच्च सरकारी अफ़सर हैं, और आप जानते हैं कि सरकार ऐंटी-साम्यवादी है।'

खन्ना का मुँह सफ़ेद पड़ गया। सी० आई० डी० के आदमियों के चंगुल में जहाँ मिस चटर्जी अकेली थीं वहाँ सोंधी तो आया ही, साथ ही वे भी आ फँसे।

मिस चटर्जी के पीछे सी० आई० डी० के आदमी का लगना

नया नहीं था। उसे इस सबकी परवाह नहीं थी। जब सरकार ने चाहा, वह जेल चली गई। पर आज यह मजेदार घटना घटी कि ट्रेन में रिश्वतखोर सरकारी अफसर और ब्लैकमेलर उसके साथ ही पकड़े गये।

लखनऊ स्टेशन पर परिस्थिति साफ हो गई। सोंधी का जहाज पकड़ लिया गया था। वायरलेस से उन्हें गिरफ्तार करने का 'आर्डर' आ चुका था। खन्ना साहब ने एक कन्ट्रैक्ट देने में काफी पैसा खाया था, वह भी उनकी अनुपस्थिति में खुल गया। मिस चटर्जी को एक आपत्तिजनक लेख लिखने के अपराध में गिरफ्तार करने का आर्डर जारी हो चुका था।

तीनों ट्रेन में एक साथ सफर करने के बाद 'पुलिसवान' में भी एक ही साथ जा रहे थे।

# त्याग-मूर्ति

अन्नपूर्णा की आकस्मिक मृत्यु का समाचार जिस समय महंत देवानन्द के पास पहुँचा, उस समय वह अपनी नई शिष्या पार्वती को वैराग्य का प्रारम्भिक पाठ सिखा रहे थे–'यह मार्ग बहुत कठिन है और संसार के झन्झटों से ऊबकर जो स्त्री-पुरुष वैराग्य-प्रवृत्ति लेकर इस ओर आ जाते हैं, इसका अनुभव उन्हें तभी हो पाता है जब उसके कठोर नियमों और कर्तव्यों को वे निभाते हैं। पहले परिवार के बन्धन से मुक्त होकर वहाँ से भाग आना तो उन्हें सहज लगता है, पर यहाँ आकर उसकी याद उन्हें विचलित कर देती है। और ठीक यहीं पर उनका पतन हो जाता है, समझीं पार्वती! इन्द्रियों को वश में करना होगा तभी तपस्या का फल मिल सकेगा।'

पार्वती सर नीचा किए सुन रही थी। अन्नपूर्णा की मृत्यु ने महंत को कुछ क्षण के लिये जैसे स्तब्ध कर दिया, किन्तु पार्वती के सामने अपने मुख का भाव परिवर्तित कर उपेक्षा से बोले-'मर गई? चलो अच्छा हुआ। पाप से मुक्ति मिल गई उसे।'

पार्वती अन्नपूर्णा के विषय में जानने को जैसे उत्कन्ठित हो उठी। नारी के भीतर की सहृदयता तड़पने लगी। उसने सर

उठाकर महंत की ओर देखा। वह उसी समय बोल उठा—'तू चिन्ता न कर पार्वती। अन्नपूर्णा का मर जाना ही श्रेयस्कर था। ऐसी स्त्रियाँ जो अपने को वश में नहीं रख सकतीं, यहाँ व्यर्थ ही आती हैं। मैं उनके लिए अपना धर्म तो नहीं बिगाड़ सकता ? तू भी सोच-समझ ले पार्वती।'

और पार्वती जैसे गहराई में डूबने-उतराने लगी।

महंत कहता रहा—'वासना अतृप्ति का दूसरा नाम है पार्वती। उसकी छाया से भी बचकर रहना होगा। अपने इष्ट की ही उपासना में रात-दिन एक कर देना होगा। संसार में कहाँ क्या हो रहा है, इस सबको जानने की तुझे जरूरत नहीं। एक सप्ताह तक तेरी परीक्षा होगी। उसके बाद यदि तू सफल हुई, तो गुरु-मंत्र दिया जायगा नहीं तो मंदिर से बाहर कर दी जायगी। एक बात और जान ले। अपने गुरु की अवज्ञा करेगी, तो नरक में जायगी। तेरी सारी तपस्या भी तब तुझे नहीं बचा सकेगी।'

पार्वती सहम गयी, महंत के स्वर में कठोरता आ गई थी।

'और यह तो बता पार्वती कि तूने वैराग्य का मार्ग क्यों अपनाया? अभी तेरी अवस्था तो उस योग्य है नहीं?' उसने पार्वती के शरीर पर गहरी दृष्टि डालते हुए पूछा।

मंदिर में धीरे-धीरे सन्नाटा फैलता जा रहा था। जो भक्त आये थे, वे दर्शन कर लौट जा चुके थे और भगवान् के विश्राम करने का समय निकट आता जानकर पुजारी ने कपाट

बन्द कर दिए थे। बिजली का प्रकाश बाहर आँगन में दूर तक फैला था। महंत की बैठक मंदिर के पीछे थी। उसी के बराबर में दो तीन कोठरियाँ थीं, जिनमें से एक में पार्वती को ठहराया गया था। आज सवेरे ही वह घूमती-फिरती हारी-थकी महंत-जी के चरणों में आ गिरी थी। वह अशान्तमना है। अनेक दुर्निवार आशंकाएँ उसे खाये जा रही हैं। संसार का मोह अब उसे अपने में बाँधे नहीं रख सका। उसने सारे बन्धन तोड़ दिये हैं। उसे""उसे""। उसकी साँस तेज चलने लगी थी।

पार्वती ने सँभलकर कहा—'अब मैं आपकी शरण हूँ महा-राज, मुझे शान्ति दीजिये। मैं बहुत सतायी गई हूँ और अब उस सबको और अधिक सहने की मुझमें शक्ति नहीं रह गई है। तभी सब-कुछ छोड़कर चली आई और लौटकर जाऊँगी भी नहीं। भगवान् के श्री चरणों में मुझे स्थान दें। मुझे सभी कुछ स्वीकार है। मैं सारे कष्ट सह लूँगी।'

महंत बोला—'नित्य सोने से पूर्व तुझे ज्ञान का प्रकाश दिया जायगा और मैं देखूँगा कि तू उसे कितने संयम के साथ पालन करती है। एक बार जिस पथ को स्वेच्छा से स्वीकार कर तू संसार का माया-मोह तोड़कर यहाँ तक आयी है, अब उससे फिसल जाना ही तेरे जीवन की सबसे बड़ी असफलता होगी। मुझमें विश्वास रख, क्योंकि गुरु में विश्वास रखे बिना निस्तार नहीं पार्वती।'

पार्वती ने सब कुछ स्वीकार कर लिया।

के दरवाज़े बन्द करने गया है। अभी लौटकर यहीं आता होगा। जा, निकल जा जल्दी से।'

पार्वती रुकी नहीं। जिस समय वह अपनी कोठरी के दरवाजे बन्द कर रही थी, उसके हाथ-पैर काँप रहे थे।

पार्वती को अन्नपूर्णा की मृत्यु का वृत्तान्त जो महन्त देवानंद द्वारा ज्ञात हुआ था, उस पर विश्वास करना ही पड़ा। किन्तु महन्त स्वयं उसे सुनकर प्रकृतिस्थ न रह सका था। वास्तव में उसकी मृत्यु का कारण वही था। एक निष्कलुष और पवित्र-हृदय और संसार से दूर रहने की उत्कट साध लेकर वह एक दिन महन्त देवानन्द के मन्दिर में आई थी। महन्त के शिष्य भोली युवतियों को फँसाने के लिये गंगा किनारे फिरा करते थे। उन्हीं में से एक से दुखी अन्नपूर्णा की भेंट हो गई। उसने महन्त देवानन्द का गुणगान किया और उन्हें अपना गुरु बना लेने का प्रलोभन दिया। अन्नपूर्णा अशान्तमना थी। संसार में उसका कोई न था। एक लड़का था, जो उसे घर से मारकर निकाल चुका था। जिन वृद्ध गृहस्थ के यहाँ वह शरण पाये थी, वहाँ भी अब रहने का स्थान नहीं था। किन्तु जिस वासना की आग को वह धीरे-धीरे दबा चुकी थी, वह नहीं जानती थी कि महन्त देवानन्द के यहाँ इन्द्रिय-वश के उपदेश के साथ उसे और भी उकसाया जाता है। वह सीधे पथ से आकर गढ़े में आ गिरी।

ठीक जैसा उसने पार्वती को समझाया था, वैसा ही प्रवचन महंत देवानंद ने एक दिन अन्नपूर्णा को भी दिया था। अन्नपूर्णा पार्वती से जवान थी और गौर वर्ण की थी। वैधव्य जीवन बिताते-बिताते उसके मुख पर उज्ज्वलता छा गई थी। और वह करुणा की प्रतिमूर्ति-सी लगती थी। उसकी ओर देखकर सहज ही दया का भाव उदय हो जाता था। महंत देवानंद ने उसे दो दिन तक वचनामृत पिलाया, फिर तीसरी रात को, जब वह सो रही थी, उसे चुपके से जगाकर उसकी काम-वासना को प्रदीप्त कर उसे पथ-भ्रष्ट कर दिया। अन्नपूर्णा ने आपत्ति नहीं की। उसने महंत के हाथ में अपने को पूर्ण रूप से सौंप दिया। और फिर जैसी प्रथा चलती आई थी, अन्नपूर्णा दिन-भर दिखाने के लिये भगवत्-भक्ति और गुरुजी की सेवा का ढोंग रचती और रात्रि में उस देव-स्थान को अपवित्र करती।

महंत इस सबको एक क्रम से विचारता जा रहा था।

और फिर वह समय भी आया, जब अन्नपूर्णा का पाप छिपा न रह सका। वह एक बच्चे की माँ बन गई। मन्दिर के पीछे ये सारे कुकृत्य होते रहे। किन्तु महंत को अब अन्नपूर्णा की जरूरत नहीं रही थी। उसके शिष्यों ने कहा 'किसी भक्त या अन्य यात्री को इस समाचार का कहीं पता चल गया, तो उसकी सारी प्रतिष्ठा धूल में मिल जायगी।' अन्नपूर्णा को उस स्थान से सदैव के लिये पापिनी, कलंकिनी और दुश्चरित्रा

कहकर निकाल दिया गया और शिष्य पावन जाह्नवी-तट पर और किसी अशांत-हृदया को शांति दिलाने की खोज करने लगे।

अन्नपूर्णा सब कुछ रोई-चिल्लाई, अपने बच्चे का पिता महंत को घोषित किया, अपने को वहीं की निवासिनी बताया किन्तु उसका विश्वास ही किसे होता? शिष्यों ने कहा—'अपना पाप महंत पर लादना चाहती है। रात ही बच्चा हो जाने के कारण घर से निकाल दी गई है, और यहाँ जब शरण नहीं मिली, तो लांछन लगाती है? तभी ऐसी गति को प्राप्त हुई है।'

अन्नपूर्णा का संसार अंधकार-पूर्ण था। वह कहाँ जाय? उसे यदि शरण दे सकती है, तो गंगा मैया ही। उन्होंने सदा से नारकीयों का उद्धार किया है, उन्हें अपने बीच शरण दी है। किन्तु अभी मोह की डोर टूटी नहीं थी। सोचा—वापस लौट जाय और उन्हीं वृद्ध गृहस्थ के द्वार क्यों न खटखटाये? संभव है, वह उसे स्थान दे दें। वे उसे बेटी बना चुके हैं। वह चाहे जितना बड़ा अपराध करे, वे जरूर क्षमा कर देंगे। फिर सोचा—बच्चे को लेकर जाना ठीक न होगा। पर उसे मार डाल भी तो नहीं सकती वह। कह देगी भगवान् को यही सब करना मंजूर था। गई थी विरक्ति लेकर, पर फिर ममता ने लौटा लिया। मार्ग में बच्चा मिल गया। उससे नहीं रहा गया। लेकर लौट आई।

महंत देवानन्द इसके बाद फिर कुछ नहीं जान सका। उस दिन जब उसके मरने का समाचार मिला, तो उसने मन-ही-मन कहा—'एक काँटा दूर हुआ।' उसे फिर नींद ने घेर लिया था। पार्वती से अगले दिन मिलने की कल्पना करता हुआ वह करवटें बदलता सो गया।

अन्नपूर्णा ने जिस समय गृहस्थ का द्वार खटखटाया, तब रात के नौ बज चुके थे। बच्चे को एक कपड़े में दाबे वह उनके निकलने की प्रतीक्षा कर रही थी। उन्होंने लालटेन के प्रकाश में जब अन्नपूर्णा को देखा और फिर उसकी गोद में एक बच्चे को दबा पाया, तो बिना कुछ सुने ही उनके मस्तिष्क में सारी बातें आ गईं, वह उनके यहाँ आश्रय चाहती है और अब वह.........?

उसने टूटे स्वर में कहा—'पिताजी!'

'मैं सब समझ गया बेटी अन्नपूर्णा।' वृद्ध झुक कर बोले। 'पर मैं मजबूर हूँ। मैं जिस समाज के बीच रहता हूँ, वहाँ तेरे लिये जगह नहीं है।' कहकर उन्होंने दरवाजा बन्द कर लिया।

अन्नपूर्णा को अब चारो ओर कुछ नहीं दिखाई दिया। उन्हीं गंगा मैया की फिर याद आई। वे ही उसे आश्रय देंगी। और फिर इसके तीसरे दिन सबके देखते-देखते वह बच्चा लिये बीच धार में बहती चली गई। जब तक उसके बचाने का प्रयत्न किया जाता, वह न जाने कितनी दूर जा चुकी थी।

पार्वती अपनी कोठरी में आने के बाद सो नहीं सकी। अन्नपूर्णा की मृत्यु उसे रह-रहकर विचलित किये जा रही थी। कहने को तो वह महंत की सारी आज्ञाएँ शिरोधार्य कर चुकी थी, किन्तु उसका मन अभी घबरा रहा था। अन्नपूर्णा की जो कहानी महंत देवानंद ने बतायी थी, उस पर वह विश्वास नहीं कर सकी। वह भी तो एक नारी है। वह भी तब क्या यहाँ पतिता होने और भ्रष्टा बनने आई है? अन्नपूर्णा यदि चरित्र-हीन होती तो वेश्या बन जाने का मार्ग खुला था। यहाँ आकर अपनी दुर्गति क्यों कराती? वह तो संसार से ऊबकर यहाँ आई होगी कि संतों के सत्संग में उसका जीवन कट जायगा। किन्तु बेचारी अपना इतना मर्मान्तक अन्त तो नहीं सोच सकी थी। उसका मन तिलमिला उठा। ये सारे उपदेश धोखे की टट्टियाँ हैं। उनकी आड़ में व्यभिचार होता है यहां। और तब उसे अपने ऊपर ग्लानि लगने लगी कि वह यहाँ क्यों चली आई? पति ने निकाल दिया था, तो घर चली जाती। और वह यहाँ सन्यासिनी बनकर रह सकेगी? नहीं, नहीं, वह अन्न-पूर्णा नहीं बनना चाहती। वह लौट जायगी। रात ही में चुपके से भाग जायगी।

उसने सुना, पड़ोस की कोठरी के द्वार धीरे-से खुले और कोई उसमें चला गया। सोचा उसने—उसकी कोई बहन उसमें रहती होगी, जो दिन-भर 'माई जी' कहकर पुकारी जाती होगी, और रात में अब""। छिः पति तो फिर पति ही है। वह

उसे मना लेगी अब। इस जीवन से वहाँ बहुत अधिक सुख है। और तभी उसे कोठरी में से बातें करने के शब्द साफ सुनाई पड़ने लगे। उसकी आशंका निर्मूल नहीं थी। उसे देवानंद पर क्रोध आ रहा था। वह पापी आ जाय, तो वह उसका गला घोंट दे।

पार्वती जीवट की स्त्री थी। उसके लिये यह असंभव भी न था।

देवानंद की आँख थोड़ी देर बाद खुल गई। उसे चैन नहीं मिल रहा था। अन्नपूर्णा को यहाँ से गये कई दिन हो गये थे और आज पार्वती के आ जाने पर उसे अपना मन काबू में रख पाना कठिन हो गया था। उसके भीतर युद्ध छिड़ा था और अंत में उसका राक्षस जीत गया। उसने थोड़ा-सा नशा और किया और लड़खड़ाते पैरों पर सँभलता हुआ उसकी कोठरी की ओर बढ़ा।

पार्वती की आँख एक पल को भी नहीं लगी थी। वह चारपाई पर बैठी अपने निकल भागने का मार्ग सोच रही थी। उसी समय महंत ने दरवाज़े पर हल्की थाप दी। पार्वती का अब रहा सहा संशय भी जाता रहा। उसने पल भर में निश्चय किया कि वह अपनी जान पर खेलकर भी इस कुकृत्य का भंडाफोड़ करेगी। वह अन्नपूर्णा की भाँति मर नहीं सकती। अपनी बहनों को इन दुराचारियों से बचायेगी। उसने उठकर दरवाज़ा खोल दिया।

महंत गिरता-पड़ता उसके ऊपर आ गिरा। पार्वती ने कड़क-कर पूछा—'क्या है ? यही संयम से रहने की सीख दी थी ? यही तुम्हारा गुरु-मंत्र है? यही इन्द्रिय दमन कर रहे हो ? धूर्त, तूने ही अन्नपूर्णा की जान ली है। तूने ही उसे गंगाजी मे डूबने को बाध्य किया है। नारकीय कीड़े तू भी उसका परिणाम भोग।' कहती हुई वह तेजी से उसकी गरदन पकड़कर दबाने लगी। महंत सभल नहीं सका। उसकी साँस घुटती जा रही थी। आँखें टँगने लगी थीं और जबान बाहर निकलने लगी। वह धीरे-धीरे मृत्यु के पाश में जकड़ता जा रहा था। पार्वती ने अपने संपूर्ण बल से उसकी गरदन दबादी। महंत निर्जीव होकर उसके हाथों से छूटकर गिर पड़ा।

पार्वती तेजी से अपनी कोठरी से निकली और दरवाजा खोल कर निकल भागने को उद्यत हुई। किन्तु फिर गश्त लगाती पुलिस द्वारा पकड़े जाने का भय उसे लगने लगा। वह बरामदे मे लेटे अन्य यात्रियों के बीच में चुपके से आ लेटी और फिर दरवाजा खुलते ही छिपकर निकल भागी। यह सब क्या हो गया पल भर में, इस सब पर वह विचारना नहीं चाहती थी।

और दूसरे दिन समाचार-पत्र में छपा था—मंदिर के महत देवानन्द की उनकी शिष्या द्वारा गला घोंटने से दुखदायी मृत्यु–मंदिर के पुजारी द्वारा सनसनीपूर्ण रहस्योद्घाटन–अभियुक्ता की खोज जारी–मंदिर में पुलिस का पहरा।

# नैनीताल की एक रात

नैनीताल की वह रात, जो मेरे जीवन की भावुकता में एक डुबकी लगाकर अपनी हिलोर से मेरे मन में ही नहीं, अपितु मेरे रोम-रोम में एक पीड़ा की मार्मिकता भर गई है, आज भी मुझे वैसी ही स्मरण है, जैसे सागर में लहरें उठ रही हों और उनका कम्पन दूर तक तरंगित होता चला जाता हो। बिजली की बत्ती जलती हो और फिर बुझ जाती हो और तब उस पर मँडरानेवाला पतिंगा अन्धकार में अपना सर पीटकर रोने लगता हो। यही सब व्यथा उस रात के एक-एक पल ने, झील के किनारे, जब चाँद निकला था और ठंडी हवा बाँज की पत्तियों के बीच सरसरा रही थी, मेरे हृदय में भर दी थी। तब मैंने सोचा था कि नैनीताल-ऐसे आमोद-प्रिय स्थान में अकेले आना, और एकान्त में रात के गहरे सन्नाटे तक बैठे रहना, कितना कौतूहल उत्पन्न कर सकता है। जब माल रोड पर पंजाबी सलवार और रेशमी ओढ़नी या जार्जेट की साड़ी में अपना सौंदर्य झिलमिलाती कोई रमणी बाल और डांस के लिये, अपने प्रेमी के साथ खिलखिलाहट बिखेरती चलती है, तो जैसे संगीत की ताल पर, उसी लय में

झील की लहरें तक हिलोरें लेने लगती हैं, और पत्तियाँ झूम-झूमकर उसका स्पर्श करने के लिये नीचे झुकने लगती हैं।

वह रविवार का दिन था। उस दिन नैनीताल में विशेष चहल-पहल थी। ऐसे दिन गृहस्थ भी अपने बीबी-बच्चों को साथ लेकर घूमने निकलते हैं। इस दिन ऊँची-से-ऊँची चोटी पर जाने के लिये एक दिन पूर्व ही से प्रबन्ध कर लिया जाता है। मौसम बड़ा सुहावना था। पिछली संध्या को वर्षा हुई थी। दूर कहीं ओले भी पड़े थे। रात-भर बड़ी सर्दी रही, फिर सवेरा होते-होते बादल साफ़ हो गये। नीले आकाश में सूर्य का गोला पहाड़ों के पीछे से निकलकर ऊपर आ गया। बड़ा मनोरम प्रभात था वह। भीगी पत्तियों पर सूर्य की किरणें चमक रही थीं और बिजली के तार जाले की भाँति उलझे-से लग रहे थे। झील की गहरी हरी सतह पर हिलोरें उठतीं और विलीन होती जा रही थीं, जिन पर नावें दौड़ने लगी थीं।

आज सवेरे से ही मन उदास था। बड़ी देर तक अपने कमरे में अकेला जागता रहा था। कुछ लिखने का मन था। शाल को चारों ओर से शरीर में लपेटे कुर्सी पर आ बैठा। पहले एक गीत की पंक्ति गुनगुनाता रहा, पर कविता लिखने का 'मूड' नहीं बन सका। बाहर फिर वर्षा होने लगी थी और बौछार खिड़की के शीशों पर पड़ रही थी। कविता लिखने का विचार छोड़कर कहानी के प्लाट की ओर ध्यान जमाया। पर उधर भी क़लम नहीं चली। हवा बड़ी तेज़ हो

गई थी। होटल के उस छोटे किन्तु साफ कमरे में हल्का नीला बिजली का बल्ब जल रहा था। दीवार पर एक-दो चित्र टँगे थे, उन्हीं में खोकर रह गया। उस रात सब कुछ सोच डाला। अपना वर्तमान जीवन और उसके आधार पर बनने वाला भविष्य, सब कुछ बड़ा नीरस लगा, भद्दा-सा। पड़ोस के कमरे में एक पंजाबी परिवार ठहरा था। कई लोग थे। जवान और बूढ़े, स्त्री और पुरुष दोनों। मुझे लगा कि उनमें एक ज़िन्दगी है और उस ज़िन्दगी में सुन्दरता है। उनकी स्त्रियों के उच्च स्वर का अट्टहास मुझे मनोरम लगा, जैसे पुष्प का खिला यौवन।

आज का दिन 'स्नो व्यू' जाने का था। पड़ोसी पंजाबी परिवार कदाचित् वहीं जाने की तैयारियाँ कर रहा था। मैं बाहर बरामदे में फूलों के गमलों के बीच खड़ा झील की ओर देख रहा था। मेरे पास से निकलते हुए उस लम्बे-चौड़े जवान ने मुझसे पूछा—'आप मिस्टर कहीं जाइयेगा नहीं ?' फिर मुझे भावों के संसार में बहते हुए पाकर बोला—'समझा, आप पोएट.......।'

'जी' मैंने धीरे से कह दिया। 'यहाँ धूप में बैठकर कुछ लिखूँगा।'

वे सब हँसते-बोलते चले गये। उनके साथ की एक लड़की ने सीढ़ियाँ पार करते-करते मेरी ओर देखा। मैं उस समय उन्हीं सबकी ओर देख रहा था। उसने दूसरी ओर दृष्टि कर ली। मैं अपने भीतर उफनाता रहा।

और उस रात जब नैनीताल में झील के किनारे लगी बिजली की रंगीन बत्तियाँ अपनी दीवाली में जगमगाने लगी और पहाड़ों के ऊपर बने बँगलों से, पेड़ों के बीच से छन-छन-कर टिमटिमाता प्रकाश नक्षत्रों की भाँति दमकने लगा, तब मैं कमरे से बाहर निकला। 'राक्सी' में उस समय मेला फ़िल्म का गीत बज रहा था—तू भँवरा है मैं फूल.........।

मैं झील के किनारे चलनेवाली माल रोड की नीचेवाली सड़क पर चल रहा था। अभी कुछ दूर गया था कि पड़ोसी पंजाबी परिवार मिल गया। उसने पूछा—'ओह! आप अब निकलते हैं घूमने?'

मैंने उसकी ओर देखकर मुस्करा दिया।

उसने पास ही के 'लेक व्यू' रेस्ट्राँ की ओर संकेत करते हुए कहा—'इसे आप देखें। मेरे दोस्त का है। बड़ा अच्छा डांस होता है।'

मैंने कहा—'यह टाइम तो घूमने का है। चाँद निकल आया है। या तो बोट में बैठकर झील की सैर करूँगा या एकांत में कहीं किनारे जा बैठूँगा। मुझे उसी में सुख मिलेगा।'

उसने कहा—'तो लौटकर आइयेगा। हम सब यहीं रहेंगे। प्रोग्राम एक बजे तक चलेगा। आज का हमारा खाना यहीं होगा।'

'लेक व्यू' में बुकिंग शुरू हो गया था। वे लोग उसमें चले गये। मैं वहाँ खड़ा रहा कुछ क्षण। अन्दर जाते उस लड़की ने

मेरी ओर फिर देखा। उसकी दृष्टि में जो भाव था, वही इन पंक्तियों की तड़पन है। काश कि मेरी आँखें उस सबको पहले ही देख पातीं और उसकी मूक व्यथा की संवेदना को मेरा हृदय अनुभव कर पाता ?

पहाड़ों के बीच में स्थित झील के ऊपर चंद्रमा आ गया था और उसका झिलमिल प्रकाश नयनाभिराम लग रहा था। ठंडी हवा और वेग से चलने लगी थी, और मल्लाह अपने फटे कपड़ों में गरीबी की सर्द आहें भर रहा था। दो घंटे से मैं नाव पर आराम से तकिये के सहारे बैठा था। चारों ओर की रोशनी साफ झलक रही थी। बाँध पर मोटरों के अड्डे के पास लगा बड़ा-सा बिजली का लट्टू अपना दिन का-सा प्रकाश फेंक रहा था और दक्षिणी माल रोड के शिलाखण्ड काली भयावनी छाया लिये जैसे अपने में समा लेने को तैयार खड़े थे। पुलिस लाइन से बजनेवाला दस का घंटा सुनाई पड़ा। नाव को किनारे लगाने का आदेश देकर मैं इस बिखरी चाँदनी पर एक कविता लिखने का भाव बनाने लगा।

अभी मेरा होटल लौटने का मन नहीं था। उत्तरी माल-रोड की दूकानें अभी खुली थीं, और लोग आ-जा रहे थे। मैं दक्षिणी माल रोड पर रंगीन बल्बों के धुँधले प्रकाश में चल पड़ा। यहीं मार्ग में, ठीक झील के ऊपर टूटे पहाड़ के कुछ टुकड़े पड़े हैं। उन्हीं पर बैठने के विचार से जैसे ही मैं वहाँ

पहुँचा, मुझे लगा कोई वहाँ पहले से बैठा है। उसकी अस्पष्ट छाया मेरी ओर आती जान पड़ी।

कुछ शंकित-सा मैं खड़ा रह गया। छाया मेरे ठीक सामने आकर खड़ी हो गई, और तब मेरी आँखों ने स्पष्ट देखा कि वह एक युवती है, और ठीक वही युवती जो पंजाबी परिवार का एक पुष्प है और जिसने दो बार मेरी ओर भाव-पूर्ण नेत्रों से देखा है। मैं अवाक् था। वह यहाँ कहाँ ? उसे तो रेस्ट्राँ में होना चाहिए था इस समय। उसके सारे साथी तो वहीं होंगे ? मैं आगे दूर तक सोचता चला गया।

उसने कातर स्वर में पूछा—'आपने पहचाना मुझे ?'

'जी हाँ, पर आप यहाँ कैसे ?' मैंने जैसे सोते से जागकर एकबारगी प्रश्न कर दिया।

'आइये, बैठें यहाँ हम लोग। सारी कहानी सुनेंगे, तो आप जान लेंगे। मैं·······मैं वह सब नहीं चाहती। आप चाहें तो मुझे बचा सकते हैं।' वह यह सब एक साँस में कह गई।

मैं कुछ सहमा।

उसने आगे कहा—'आप डरिये नहीं। अभी घूमने का वक्त है। कोई शक भी नहीं कर सकता। आइये, उधर चट्टान पर बैठेंगे हम लोग। मैं वहाँ से भाग आयी हूँ।' फिर कुछ रुककर बोली—'वह देखिये, सामने झील के उस पार है 'लेक व्यू रेस्ट्राँ'। 'कन्सर्ट' चल रहा है। मैं जानती थी अभी आप होटल वापस नहीं लौटेंगे। आपको अकेला रहना

पसन्द है। यही एक ऐसी जगह है, जहाँ आपके ऐसे लोग मिल सकते हैं। मैं देर की आई हूँ। आपको 'बोट' बराबर देख रही थी। समझ रही थी कि इस सर्दी में आप ऐसे ही घूम सकते हैं। आप''''आप'''''''''''। वह उद्विग्न—सी होती जा रही थी।

मुझे अब जैसे सर्दी लग ही नहीं रही थी। लगा जैसे पसीने से नहा गया हूँ। छोटे से जीवन में प्रथम बार ऐसा अवसर आया था। एक पंजाबी युवती एकान्त में इस प्रकार मेरी सहायता की भीख माँग रही थी। मैंने साहस किया। वह सर्दी से काँप रही थी। रेशमी कपड़ों में ठण्ड और भी लग रही थी। वही दोपहर के कपड़े थे उसके, जिन्हें पहनकर वह घूमने निकली थी। मैंने अपना शाल उसे देते हुए कहा—'लो, इसे चारों ओर से लपेट लो। आपको सर्दी लग रही है'।

'और आप ?' उसने तत्काल ही पूछ दिया।

उसकी वाणी की आत्मीयता ने मुझे और भी प्रभावित कर दिया, कहा—'मैं तो गर्म कुरता पहने हूँ। ऊन का स्वेटर भी है। आप मेरी चिन्ता न करें।'

हम दोनों चट्टानों के बीच में जा बैठे। वह ठीक मेरे सामने थी। चन्द्रमा की किरणें उसके मुख पर पड़ रही थीं और उसका उज्ज्वल सौंदर्य और भी आकर्षक लग रहा था।

कहने लगी वह—'मैं मुसीबत से घिरी हूँ। जिसके साथ मैं नैनीताल आयी हूँ, वह मेरा दूर का चाचा है। मुझे रेस्ट्राँ

में डान्स पार्टी में जबरदस्ती भेजना चाहता है। इसलिए कि मुझे नाच और गाने मे शौक है। पर मैं इसे अपना पेशा नहीं बनाना चाहती। रेस्ट्राँवालों से उसने मेरी तारीफ की थी। एक दिन प्राइवेट तौर से उन लोगों ने मेरा गाना सुना और डान्स भी देखा। तब से वे मुझे अपनी पार्टी में घसीटना चाहते हैं। चाचा को उन्होंने काफी रुपया इसके लिये दिया है। यों समझिये कि मैं उनके हाथों बिक गयी हूँ। पर वहाँ की जिन्दगी·······उफ्! मैंने वह सब देखा है। डान्स खत्म हो जाने के बाद······आप समझ गये न? हम लोग बाक़ी रात के लिये बेच दी जाती है। वहाँ सैकड़ों इसी सौदे के लिए आया करते हैं।'

मुझे लगा कि वह रो रही है। कहा मैंने—'रोती क्यों हैं आप? मुझसे जो कुछ बनेगा, उठा न रक्खूँगा।'

उसने ओढ़नी से आँसू पोंछते हुए कहा—'और मेरा चाचा ज़ालिम भी है। अमृतसर में रहते थे हम लोग। वहाँ अकेले इसने न जाने कितने मुसलमानों को मौत के घाट उतार दिया। मुझे भी मारने की धमकी देता है। उसके डर से आज मैंने अपना नाम प्रोग्राम में दे दिया था। तभी वह बड़ा खुश था आज। 'स्नो व्यू' दिखाने ले गया। खूब ख़ातिर की। आपको भी बुलाया है इसीलिये। कहता था—आप बड़े भले लगते हैं। मुझे सच पूछिये तो उसी ने आप तक पहुँचने को मजबूर किया। जब आप भले हैं तो·······मेरी मुसीबत दूर करिये

न ? मुझे यहाँ से कहीं ले चलिये। मैं ग़रीबी में रह लूँगी, पर.........।' शाल में सर छिपाकर रोने लगी वह।

रात बढ़ती जा रही थी। मैं समझ नहीं सका कि उसके लिए क्या करूँ ? मैं विवाहित हूँ। अपनी पत्नी के प्रति मेरा कुछ उत्तरदायित्व है। मैं उसे कहाँ ले जाऊँ ? और फिर यहाँ से निकलने का मार्ग ? लारी से ही जाया जा सकता है। उसका चाचा सवेरा होते ही उसकी खोज करेगा। पुलिस.....। मैं चुप था।

उसने कुछ स्वस्थ होकर कहा—'आप हिम्मत बाँधिये। मैं रेस्ट्राँ से बचकर जब आ गई हूँ, तो नैनीताल से भी निकल चलूँगी। आप फ़िक्र न करें। हम लोग पगडन्डी के रास्ते भुवाली चलेंगे। वहाँ से लारी पर अलमोड़ा चल देंगे।'

मैंने भारी गले से पूछा—'और पुलिस ?'

'उसे देने के लिए मेरे पास रुपया है। पर जान ही कौन सकेगा कि मैं आपके साथ भागी हूँ ? आप मेरे.........नहीं हैं ? मैं कपड़े बदल लूँगी। यू० पी० की बन जाऊँगी। आप दुबले-पतले हैं, बीमार बन जाइयेगा। मैं बातें कर लूँगी।'

'पर' मेरे मुँह से अनायास ही निकल गया।

'पर क्या ?' वह जैसे आँख फाड़कर मेरे मुख की ओर देखने लगी। कदाचित् वह सोचने लगी थी कि उसकी-सी युवती, जिसके पास यौवन का उफान है, रूप की चाँदनी है, कला है, धन है, फिर भी मैं उसे क्यों अपने से दूर करना चाहता

हूँ। मनुष्य को इस सबको छोड़कर एक स्त्री से और मिल भी क्या सकता है ?

मैंने दबे कण्ठ से कहा—'आप दुखी हैं, और मैं आपको और पीड़ा नहीं पहुँचाना चाहता। मेरी तो शादी हो चुकी है।'

'शादी'? उसने जैसे दोहराया फिर बोली-'तो भी कोई बात नहीं। आप मेरा साथ दे दीजिये बस, मैं और कुछ नहीं चाहती। यहाँ से सबेरे ही मेरे साथ चल दीजिये।'

मुझे लगा असमर्थता मेरे चारों ओर घूमने लगी है। मैंने कहा—'होटल में मेरा सामान पड़ा है? उसे कैसे लाऊँ? किसी को शक हो गया, तो पुलिस मेरे घर पहुँचेगी। मेरा सारा पता वहाँ है और तब मेरा""""? आप नहीं सोच सकतीं। समाज के सामने मैं सर भी नहीं उठा सकूँगा। सच बात पर कौन विश्वास करेगा? आपको अपने साथ भगाने के अपराध में मैं अदालत में खड़ा किया जाऊँगा। मुझे-मुझे सोचने का मौक़ा दीजिये।'

वह उठकर खड़ी हो गई। बोली—'तब आप मेरे लिए कुछ भी नहीं कर सकते? आप आदमी नहीं हैं। एक बेबस और लाचार औरत के लिए आप कुछ भी करने से मजबूर हैं।' लीजिये अपना शाल। माफ़ कीजियेगा, जो आपको इतनी तकलीफ़ दी। आपको समझने में मैंने जबरदस्त भूल की। आपके ऐसे लोग तो इस दुनिया से दूर हवा में उड़ा करते हैं।

उन्हें किसी के दुख-दर्द से क्या मतलब ?' कहकर वह एक ओर को चल दी। मैं उसे रोक नहीं सका। मैं नहीं समझ पा रहा था कि अपने को क्या कर डालूँ? बादल के एक टुकड़े ने आकर चन्द्रमा को ढक लिया था।

उस रात इस घटना पर विचारता कहीं बारह बजे होटल पहुँचा। 'लेक व्यू रेस्ट्राँ' आज जल्द ही बन्द हो गया था। मैं आकर कमरे में पड़ रहा। न बत्ती जलाने का मन हुआ और न कपड़े बदलने का। पड़ोस के कमरे में कोई धीरे-धीरे बातें कर रहा था, पर मैंने उसे सुनने का प्रयत्न नहीं किया। उसी युवती का म्लान मुख जिस पर बादल की काली छाया समा गयी थी, मुझे रह-रहकर स्मरण आ रहा था।

सवेरे जब सोकर उठा तो सुना पंजाबी कह रहा था—'चली गई साली, बदजात, पुलिस में रिपोर्ट कर दी है। पकड़ी जरूर जायेगी।'

मेरा मनुष्य उस समय चीत्कार कर रह गया। एक युवती को कुपथ से बचाने में भी मैं सहायक न हो सका और मुझे लगा कि मेरे चारो ओर भयानक अट्टहास गूँज रहा है।

# आग

जसवन्त ने ऊपर सर उठाया। बूढ़ा मनुष्य उसके कन्धे पर झुका कान में अस्फुट स्वर से कह रहा था—'और……और सोच में क्यों पड़ते हो? भाग्य पर विजय तो नहीं पा सकते। अपनी सामर्थ्य-भर प्रयत्न किए, किन्तु सब निष्फल हो गए। पर भीख भी तो नहीं माँगी जा सकती। लम्बे-लम्बे भाषण देकर तुम्हारे लिये धन एकत्रित किया जाता है, किन्तु तुम लोगों को उससे क्या लाभ हो पाता है? समय की गति जानी नहीं जा सकती। कब क्या हो जायेगा, इसे कौन देख आया है?'

जसवन्त सोचने लगा—वह गुलाब को उसके यहाँ भेजने कैसे जायगा? वह मनुष्य होकर स्त्री की कमाई खाये, छि:! यह सब उससे नहीं होगा। कितना घृणित, कितना निन्दनीय कार्य है? उसके जी में आया कि वह बूढ़े के सर के बाल पकड़कर खींच ले और उसे घसीटता बाहर निकाल लाये। वह आधे पेट रहेगा, चीथड़े पहन लेगा, पर यह सब नहीं होने देगा। जब उस पर विपत्ति का पहाड़ टूट चुका है और वह उसे सहकर भी मर नहीं सका, तो अब अपना धैर्य क्यों छोड़ बैठे? उसने क्षुब्ध होकर कह दिया—'आप जाइये लालाजी,

यह सब करने को मैं तैयार नहीं हूँ। अब फिर कभी मत आइयेगा। हम पेट के लिये अपना चरित्र नहीं बेच सकते।'

बूढ़े ने अपनी छोटी किन्तु पैनी आँखें उसके मुख पर गड़ा दीं। जसवन्त के हृदय के भीतर जैसे वे तीर की भाँति समाती चली गईं। वह उनकी पीड़ा से जैसे कराह उठा। उसने दूसरी ओर मुँह घुमा लिया।

बूढ़ा एक कदम और आगे बढ़ा। उसके कन्धे पर हाथ रखकर अपने भारी, किन्तु बैठे गले से बोला—'सोच लो भाई, हमारे मन में तुम्हारे लिये पूरी सहानुभूति है। पर मेरे पास भी तो तुम्हें देने को कुछ नहीं है। जो दूसरों से लाता हूँ, उसी से अपना पेट पालता हूँ। और फिर मैं दूकान पर बिठाने के लिये तो नहीं कहता। भला आदमी है। पैसा पास है। और शौकीनी की तो बात ही क्या? तुम्हारे साथ हमारी भी रोटियाँ चलती रहेंगी। दिन-भर तुम्हारी गुलाब तुम्हारे साथ रहेगी। कौन क्या जान सकेगा?'

जसवन्त का सर्वाङ्ग क्रोध से काँप उठा। बूढ़े की गर्दन पकड़ कर दबाता हुआ वह बोला—'और समझायेगा, क्यों बे? निकल यहाँ से, नहीं तो नीचे डाले देता हूँ। फिर आया जो कभी इधर, तो खून कर डालूँगा। फाँसी जाना पड़े।'

बूढ़े की आँखें ऊपर टँग गईं। प्राण निकलते-निकलते रह गये। दोनों हाथ जोड़कर गिड़गिड़ाने लगा।

गुलाब कमरे में थी, बाहर आ गई। जसवन्त का हाथ

पकड़कर खींचती हुई बोली—'मार डालोगे, क्यों ? पुलिस आयेगी और सारी मुसीबत भी तो हमीं को झेलनी पड़ेगी। छोड़ो न ?'

जसवन्त ने हाथ ढीला कर दिया। बूढ़े को जैसे मुक्ति मिल गई। चुपचाप सीढ़ियाँ उतरकर नीचे आ गया।

गुलाब ने पूछा—'कौन था ?'

'औरतों का दलाल,' कहकर जसवन्त अपने को प्रकृतिस्थ करने का प्रयत्न करने लगा।

गुलाब को सारी बातें समझते देर नहीं लगी। वह यहाँ निश्चय ही उसी के लिये आया होगा। वह गरीब है, पीड़ित है, और लुटकर नए देश में आ पड़ी है। पर इसका यह अर्थ तो नहीं कि वह अपना स्त्रीत्व बेचकर पेट पाले ? उसने दाँत पीस लिये। जसवन्त उसका गला दबा देता, तो अच्छा होता। जेल-खाने में रोटियाँ तो मिल जातीं। वह भूखों मर जायेगी, पर""।

जसवन्त उसे चुप देखकर कहने लगा—'तुम पर आँख लगी है उसकी गुलाब। कहता था""क्या कहूँ उस सबको ! मुझे तो सुनकर उसका खून पी लेने का मन हुआ।'

गुलाब ने उत्तर नहीं दिया। कमरे में चली गई।

धर्मशाला भर में उस दिन यह चर्चा चलती रही कि गुलाब का यहाँ रह पाना कठिन है। उसकी सुन्दरता ही उस पर विपत्ति ढा रही है। पेट के लिये जसवन्त कुछ कर नहीं पा रहा है। कहीं उस बूढ़े के चंगुल में फूल-सी गुलाब आ न जाय ?

जसवन्त और गुलाब उस रात-भर जीविका के लिये साधन खोजने और यहाँ से किसी अन्य स्थान को चल देने की योजना बनाते रहे।

पंजाब की भीषण घटनाएँ अपनी सर्प-सी लपलपाती जीभ निकाले डसने को फिर रही थीं। बर्बरता नग्न होकर ताण्डव नृत्य कर रही थी। मानव पिशाच बन चुका था, और धर्मान्ध होकर अपनी सत्ता के मद में पाप बटोर रहा था। पन्द्रह अगस्त की स्वाधीनता बेला में जब सारा भारत दीप्तमान हो चमक रहा था, पंजाब में युवतियों का सतीत्व अपहरण किया जा रहा था। स्वतन्त्रता की देवी ने उस प्रकार लाखों निरीह प्राणियों की बलि ली। स्त्रियों को विधवा और बच्चों को अनाथ बनाया।

जसवन्त पश्चिमी पंजाब का रहने वाला था। किसी प्रकार शरणार्थियों के झुन्ड में अपनी गुलाब को छिपाये शरणार्थी नहीं, भिखारी और उत्पीड़ित बनकर यहाँ तक आ सका था। जो कुछ पास था, सब पेट की ज्वाला में फूँक चुका था। कपड़े बेचने का व्यापार चलाया, सो भी नहीं चला। नौकरी करने योग्य पढ़ा नहीं था। सरकार के आश्वासनों पर बैठा अपने भाग्य को आजमा रहा था।

कुछ दिन इसी प्रकार बीत गए।

जसवन्त को बाजार में इधर से उधर भारी मन घूमते देखकर और उसके रहने का पूरा पता लगाकर बूढ़ा उससे आ मिला था। दो-चार दिन सहानुभूति की बातें सुनाकर उसने

सहज ही जसवन्त का विश्वास पा लिया। एकाध बार वह धर्मशाला भी आया और गुलाब को देख गया। गुलाब उसे बहुत पसन्द आई। फिर एक दिन साहस कर उसने जसवन्त से उसके ले जाने का प्रस्ताव कर दिया। गुलाब के मुख की सारी अरुणिमा जैसे उसी दिन से लुप्त होती गई। बूढ़े को वह एक पल को भी नहीं भूल पाती। उसकी आकृति उसे विचलित किए रहती।

गुलाब जसवन्त के निकट ही कुछ दूर पर सो रही थी कि अचानक उठकर बैठ गई और चिल्लाने लगी। सारे धर्मशाला में अँधेरा फैला था। सब कमरों में भीतर-बाहर शरणार्थी टिके थे। गुलाब का चिल्लाना सुनकर कोई अनहोनी घटना हो जाने के भय से वे जाग उठे। कुछ दौड़कर निकट आ गए। जसवन्त उसे चुप कराने में लगा कह रहा था-'डरती क्यों है गुलाब ? वह बूढ़ा अब यहाँ कदम भी नहीं रख सकता, मार डालूँगा साले को। मन हलका कर। मैं क्या तुझे कहीं जाने दूंगा ?'

पड़ोसी ने पूछा—क्या बात है जी जसवन्त ?'

सोते से डर गई है।' उसने उत्तर दे दिया।

एक दूसरी स्त्री बोली—बूढ़े के डर से मरी जा रही है बेचारी। जब से उसे देखा है, आधी भी तो नहीं रह गई है। सारे दिन कमरे से बाहर नहीं निकलती। क्या करें ?'

एक लम्बी दाढ़ीवाला अधेड़ सलाह देने के नाते जसवन्त

को अपने साथ बुला ले गया, बोला—'पेट के लिए तो सभी कुछ करना है दोस्त। पाप-पुण्य का विचार तब नहीं किया जाता। तुम्हारा काम नहीं चल रहा है। खाने-पीने को छोड़कर और खर्च भी तो चाहिये? कितना देने को कहता था बूढ़ा?'

जसवन्त क्रोध से उबल पड़ा। उस अँधेरे में ही अपना सारा बल लगाकर एक भरपूर घूँसा मारता हुआ वह चिल्ला उठा—'कुत्ते, तेरे बहू-बेटियाँ नहीं हैं क्या? उन्हें क्यों नहीं....?'

उसकी बात पूरी करने के पूर्व ही उसे पड़ोसी पकड़ लाया, समझाने लगा—'गुस्सा नहीं किया जाता जसवन्त। जिसकी समझ में जो आता है वह कहता है। पर कर तू अपने मन की। वह भी तो तेरा भाई है। तेरी ही तरह दुखी। तीन जवान लड़कियाँ, दो बहुयें, और सभी को अपने सामने लुटते और उनके टुकड़े होते देख चुका है। कहीं खून न कर बैठे तेरा? सोच-समझकर रहना होगा, सुनता है? जा, गुलाब को समझा दे। कभी न कभी तो मुसीबत के दिन टलेंगे ही।'

जसवन्त चला आया। धीरे-धीरे सभी अपने-अपने कमरों में चले गए।

गुलाब अब स्वस्थ हो चुकी थी। जसवन्त ने उसे अपने पास ही लिटा लिया, पूछा—'क्यों डर गई थी? मैं तुझे कहीं नहीं जाने दूँगा?'

उसने उसके चौड़े सीने में अपना मुख छिपाते हुए धीरे से

कहा—'क्या करूँ मैं ? बूढ़ा मुझे रह-रहकर याद हो आता है। लगा करता है जैसे कहता हो—'आ गुलाब, तुझे रानी बना दूँगा। जितनी सुखी तू अपने पंजाब मे भी नहीं थी, वह सब यहाँ लूट। तेरा प्रेमी बड़ा रईस है। ज़िन्दगी बन जायगी।'

जसवंत कुछ क्षण को मौन हो गया। प्यार से अपना हाथ उसकी पीठ पर फेरता हुआ बोला—'यह सब तेरे मन का धोखा है गुलाब ! सोच न कर उसके लिये।'

गुलाब फिर कुछ नहीं बोल सकी। आँखों में आँसू भर आए थे। उन्हें जसवन्त पर न प्रकट कर वह सो जाने का बहाना किए वैसी ही पड़ी रही।

बड़ी दौड़-धूप के बाद कहीं जसवन्त को एक नौकरी मिली थी। पर एक सप्ताह के भीतर ही समाप्त भी हो गई। लिखने-पढ़ने का काम था। वह जानता था कि वह उसे चला नहीं पाएगा, किन्तु परेशानी और चिन्ता के बीच चैन से साँस लेने के लिए उसने अपनी योग्यता बढ़ा-चढ़ाकर बताकर उसे प्राप्त कर लिया था। और एक दिन मालिक ने जब सारा काम चौपट होते देखा, तो उसका हिसाब उसी समय कर दिया।

पहाड़-सा जीवन फिर सामने आ गया। सोचा उसने-इससे तो अच्छा था, वह भी उस हत्या-काण्ड का शिकार हो जाता। इस प्रकार पल-पल पर जलना तो न पड़ता। पेट में जो आग लगी है, वह बुझने का नाम नहीं लेती।

गुलाब इधर कई दिन से अपने को समेट कर चल रही थी। कमरे से बाहर नहीं निकलती थी दिन में। मैले कपड़े पहने रहती। खाना जो रूखा-सूखा मिल जाता था, उसी पर संतोष कर लेती। धीरे-धीरे उसके शरीर की सारी कमनीयता विलीन होती जा रही थी। उसका शरीर कृश होता जा रहा था। अपने जीवन के सघन अन्धकार में वह चारों ओर कहीं कुछ भी न देख सकी, जो प्रकाश-किरण बनकर मार्ग-दर्शन करा सके। चिन्तित और व्यथित गुलाब अपनी मृत्यु-कामना करने के अतिरिक्त और कुछ नहीं सोच सकी। उसके नेत्र आकुल होकर जिधर देखते, उधर उसे बूढ़े के सदृश ही भयानक मानव-शक्लें दिखाई पड़ती, जो उसके सौन्दर्य पर अपनी जीभ लपलपाती थीं। उसके शरीर को पाकर सभी कोई हर प्रकार की सहायता देने की बात कह सकता था, पर वैसे सहानुभूति के दो शब्द भी उनके मुख से नहीं निकल पाते थे।

और तब कुछ क्षण को वह विचारने लगी कि उसके पास क्या है, जिस पर लोग उसे……… ? उसने उठाकर शीशे में अपनी छवि देखनी चाही, किन्तु वह अपने स्थान से हिल भी न सकी। जहाँ थी, वहीं बैठी रही निश्चल।

जसवन्त बाजार गया था। धर्मशाला के बाहर दूर तक बाजार चला गया था। अनेक प्रकार की वस्तुएँ वहाँ बिक करतीं। गुलाब का जी उनके लिए ललचाया करता, किन्तु वह मन मारे रहती। दिन-भर फेरीवाले नाना प्रकार की चीजें बेचने

लाते। वे धर्मशाला के बीच आँगन में बैठकर आवाज़ लगाते। जिनके पास पैसा था, वे उनसे सौदा करते और वह घुट-घुट-कर उन्हें देखा करती। वह आश्रिता थी अब। सरकार की ओर से कभी कोई नई चीज़ खाने को मिल जाती, तो उसकी आँखें सजल हो जातीं। वह इसका दोष किसके सर मढ़े ? देश को आज़ादी मिली, पर उसकी बरबादी हो गई और अकेली उसकी ही क्या, लाखों की बस्ती उजड़ गई। कितना महँगा सौदा पड़ा ? वह विचलित हो उठी।

जसवन्त अभी लौटा नहीं था। गुलाब कमरे के सामने-वाले बरामदे में बैठी नीचे की ओर देख रही थी। सरकारी अफ़सर आया था कोई। मैनेजर वाली कुर्सी पर बैठा उसका रजिस्टर देख रहा था। कुछ और लोग चारों ओर से उसे घेर-कर खड़े हो गए। उन्हीं में ठीक कोई उसके सामने आकर खड़ा हो गया था, जहाँ से वह उसको भली भाँति देख सकता था। जब-जब गुलाब नीचे देखने के लिए सर उठाती, वह उसे अपनी ओर ही निहारते पाती। वह कुछ समझ नहीं सकी। उसने उधर से अपना मुँह फेर लिया और जब अफ़सर चला गया, तो उसके पीछे लगी भीड़ में वह भी समा गया।

इसके बाद ही जसवन्त आ गया। होठों पर मुस्कराहट थी। गुलाब के सामने वहीं पृथ्वी पर बैठता हुआ बोला—'आज पेट के लिये रोज़गार मिला है गुलाब। हम-तुम दोनों को एक साथ चलना होगा। रात में चलेंगे, सवेरे लौट आएँगे। पूरी रात का

पचास रुपया मिलेगा। फिर कमी किस बात की रहेगी? बढ़िया कपड़े, खाना और सभी कुछ........। सब अपने पास होगा गुलाब। महीने में दो-चार बार ही जाना पड़ेगा।'

गुलाब यह सुनकर भी निरुत्साहित सी रही। एक रात का पचास रुपया उसकी समझ में नहीं आया। जो आशंका थी, वही सच होती जान पड़ी। बूढ़े के जाल में फँस गया है जसवन्त, उसे ऐसा लगा। उसकी दुर्गति होगी। यही होना है। जसवन्त पैसे के लोभ में अपना चरित्र, अपना कर्तव्य सभी कुछ बेच बैठा है। वह उठकर कमरे के भीतर चली गई।

जसवन्त भी उसके ठीक पीछे जा पहुँचा। उसे अपनी बाहों में भरता बोला—'बोल गुलाब, तू मुरझा क्यों गई? रुपया तू नहीं चाहती क्या? ऐसी ही भिखारिन बनी रहना चाहती है? अपनी सूरत तो देख, कैसी हो गई है? जब भर पेट खाना नहीं मिलता तो...? कानून-क़ायदे पैसेवालों ने बनाए हैं। उनके लिए हैं। हम गरीबों का धर्म ही क्या? तुझे मेरा कहना मानना पड़ेगा। कोई तकलीफ नहीं होगी। बड़े प्यार से रक्खी जायगी। और सोच देख, इसमें बुराई ही क्या है? एक रात के पचास रुपया! बस, तू हाँ कर दे, बोल?'

गुलाब के जी में आया, उसे धक्का देकर दूर कर दे। उसका मुँह भी न देखे। यही वह जसवन्त है, जो एक दिन बूढ़े से लड़ा था। कहा उसने—'तू जसवन्त पापी है। मैं नहीं जाऊँगी कहीं। तुझे अपने ऊपर शर्म नहीं आती? तू आदमी है?'

जसवन्त क्रोधित नहीं हुआ। सब कुछ सहकर बोला—'यह सब तू मत सोच गुलाब। मैं तेरे लिये ही यह कर रहा हूँ, इसलिये कि हम-तुम भी आराम की जिन्दगी बिता सकें। दुनिया मे 'पाप' कुछ नहीं है गुलाब। परिस्थिति सब कुछ करने को मजबूर कर देती है। उसके सामने झुकना ही पड़ता है।'

गुलाब सिसक-सिसककर रोने लगी।

जसवन्त उसे चुप करता हुआ बोला—'रोएगी, तो पड़ोसी आ जुड़ेंगे। कहेंगे, यह सब रोज़-रोज़ क्या होता है? बड़ी बदनामी होगी। चुप हो जा, तुझे कोई तकलीफ़ नहीं होगी।'

गुलाब सिसकती रही। जसवन्त ने उसके हाथ में पाँच का नोट देते हुए कहा—'यह ले, पेशगी दिया है उसने। तुझे यहाँ देख भी गया था। बड़ा बेचैन है तब से। तेरे सहारे, सुना गुलाब, तेरे सहारे मैं भी जिन्दा रह जाऊँगा। नोट रख ले।'

गुलाब फिर भी कुछ नहीं बोली।

रात के जब दस बज गये, तो चौकीदार को एक रुपया देकर धर्मशाला का फाटक खुलवाकर जसवन्त गुलाब को लेकर बाहर आ गया।

फूल-सी मुरझाई गुलाब को महीना भर बाद जसवन्त डाक्टर के यहाँ ले गया। डाक्टर ने गुलाब के शरीर की परीक्षा की. फिर जसवन्त की ओर देखा—'आप अपना इलाज कराइये पहले। आपका रोग इसको भी हो गया है।'

जसवन्त समझा नहीं कुछ।

डाक्टर ने स्पष्ट करते हुये कहा—'आपको……रोग है; जिससे आपकी पत्नी भी ग्रसित हो गई है। यह रोग भयंकर होता है। शरीर सड़ जाता है। आपको नहीं मालूम यह सब, बड़ा आश्चर्य है!'

जसवन्त के नेत्र डबडबा आये। डाक्टर को अलग ले जाकर दुखित स्वर में बोला—'मुझे तो कोई रोग नहीं है, पर मैं इसे पैसे के लोभ में एक स्थान पर पहुँचा आता था और सवेरे ले आता था।……क्या करते हम लोग? सब कुछ खो बैठे। अब तो मुँह दिखाने लायक भी नहीं रहे। वहाँ वाले हमारी जिन्दगी को इस तरह बरबाद कर देंगे, यह हम नहीं जानते थे डाक्टर। हम तो वैसे भी पीड़ित और दुखी थे।'

डाक्टर स्तब्ध खड़ा सुनता रहा। कह भी क्या सकता था? जसवन्त ने कातरता से पूछा—'गुलाब क्या अच्छी नहीं होगी डाक्टर?'

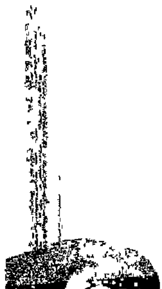
डाक्टर ने सांत्वना दी—'अस्पताल में भरती करवा दो। अभी ताजा मामला है, ठीक हो जायगी। वैसे बिना पैसे कौन दवा करेगा?'

जसवन्त उस दिन के लिये दवा लेकर गुलाब के साथ चला आया। गुलाब बच जाए, बस यही वह चाहता था।

और उस रात को जब बूढ़ा ताँगा लिये उसे लेने आया तो

उसने देखा—एक दूसरे ताँगे में अपना सारा सामान रक्खे जसवन्त गुलाब को लिये स्टेशन की ओर जा रहा था।

बूढ़ा यह देखकर कुटिलता से मुस्कराया—जैसे उपेक्षा से कहा हो—'जाओ तुम लोग। एक नहीं, पचासों गुलाब मुझे मिलेंगी। सुन्दरता की पृथ्वी पर कमी नहीं है। पैसे से सभी कुछ मोल लिया जा सकता है।'



# पूर्णिमा

पूर्णिमा को घर में पूनो कहकर पुकारा जाता था।

और पूनो वास्तव में पूर्णिमा के शशि-सी उज्ज्वल ठीक वैसी ही शीतल और नयनाभिराम थी, जैसे समस्त आकर्षण एक बिन्दु के विस्तार में बढ़ता हुआ आ समाया था कि वह जीवन की डोर को चेष्टा भरकर बाँधे ही रख सके। विलगाव की भावना जो अनायास ही भावातिरेक बनकर अन्तर को छूती हुई उसमें एक विकर्षण उत्पन्न कर देती है, पूनो के प्रति जागरूक ही न हो सके और न मन में उठनेवाले अलक्षित भावों का ही व्यतिरेक कर सके।

पूनो से मेरे परिचय की रंगीन कहानी है, जो मानव की प्रेमावस्था में जाने अनजाने, एक मूक, किन्तु मधुर और उल्लास-मय स्पन्दन ला देती है। मानो प्रेम की जो अलौकिकता है, वही सार है, वही जीवन है और वही श्वास का कंपन है, जो उठते-बैठते और सोते-जागते भी मनुष्य का छोर पकड़े रहती है।

मेरे पास जो हरी किनारी का रेशमी रूमाल था, वही जैसे इस परिचय का साकार रूप था और पूनो का प्रेमोपहार। उस दिन सिनेमा में सहज ही उसका साथ हो गया, और फिर

धीरे-धीरे हम दोनों परिचय की सीमा लाँघकर अभिन्न-से बनते गये। उसका वह हरी किनारीवाला रूमाल जब उसके हाथ से छूटकर गिर पड़ा, तो मैंने उठाकर उसे अपने कुर्ते की जेब में रख लिया। पूनो ने शायद मेरा मनोभाव समझ लिया अथवा ऐसी छोटी वस्तु के लिये अपनी अधीरता न प्रकट की, यह तो मैं बहुत बाद में निर्णय कर सका, किन्तु उस समय वह मेरी ओर देखकर हँस दी केवल, जैसे कहती हो—'अच्छा किया, मुझे स्मरण तो रक्खोगे।'

इसके लगभग एक सप्ताह बाद जब मैं पूनो के यहाँ बैठा अपनी कविता गुनगुना रहा था, तो उसका ध्यान मेरी ओर विशेष रूप से अटक गया। उसे कविता से स्वभावतः स्नेह है, यह मैं उसी दिन जान सका। मेरी ओर अपलक दृष्टि से निहारकर वह मानो नेत्रों की भाषा में पूछ उठी—'तुम प्रसन्न, कवि हो क्या ?'

मैं चुप हो गया और दीवार पर लगे एक चित्र की ओर अपना सारा ध्यान केन्द्रीभूत करने का प्रयास करने लगा। तब उसने कुछ क्षण स्थिर रहकर कह ही तो दिया—'आप तो कवि जान पड़ते हैं, हैं क्या ?'

मैं सब कुछ चाहने पर भी 'न' नहीं कर सका, उत्तर दे दिया—'हाँ, यों ही पंक्तियाँ जोड़ लेता हूँ, किन्तु इतने से ही तुम मुझे कवि न समझ बैठना।'

'और कविता की अनुभूति से तो प्रेम होगा ही ?'

मैं अस्वीकार न कर सका।

'भावुकता के सागर में गोते भी लगाते होंगे और कल्पना के पंख लगाकर उड़ते भी होंगे ?'

मैं उसकी ओर अनिमेष देखता रह गया, फिर मुस्करा दिया केवल। उसके मन में उठनेवाले भाव मेरे हृदय में लकीरें बनाते चले गये। पूनो की अन्तर्मुखी प्रतिभा क्या: ठीक बाह्य रूप-सी ही सम्पन्न है ? और""और""?

पूनो बीच में ही बोल उठी—'तो सुनाओ न कुछ। मुझे कविता से स्नेह है।'

और मैं सचमुच ही आनाकानी करने की बात भी न सोच सका। पूनो का आग्रह टाल सकना मेरे-जैसे लोगों के लिये शक्य नहीं है। मैंने भूमिका बाँधने के स्वर में कहा—'सुनती हो पूनो, उस दिन तुम्हारा हरी किनारीवाला रूमाल जब मेरी जेब में आ गया था और उसे घर ले जाकर मैंने भली भाँति देखा-भाला, तो एक प्रेम-कहानी, जो जाने-अनजाने ही ऐसी छोटी-छोटी वस्तुओं को लेकर चल पड़ती है, मेरे मस्तिष्क में सहज ही आ गई। किन्तु तुम यह न समझना पूनो कि मैं तुम्हारे इस रूमाल को लेकर अपने और तुम्हारे बीच चल पड़नेवाले रोमांटिक विचारों की बात कहूँगा। हाँ, तो मैंने उस रूमाल को आकर्षण का एक केन्द्र मानकर और उसे अपने जीवन की एक निधि समझकर एक कविता लिखी है—'रेशमी रूमाल'—सुनो, तो सुनाऊँ ?'

पूनो मेरी बात को ध्यान-पूर्वक सुन रही थी और अपने प्रति मेरा स्नेह जानकर कदाचित् अपने भावों से उसका सामंजस्य भी करने लगी थी। वैसी ही स्थिर होकर बोली-'तब तो आप निरे कवि ही हैं। इन छोटी-छोटी-सी बातों को लेकर यदि आप लिखने लगे, तो पार भी पा सकेंगे ?'

'पूनो' मैंने अपनी बात को उलझाते हुए कहा—'आदमी तो इतना लिखता है कि सभी कुछ लिख डाल सकता है, यदि उसे सामग्री मिलती रहे। कभी-कभी तो इसी खोज में, कि क्या लिखा जाय, किसे आधार माना जाय, महीनों लग जाते हैं। लेखक की दृष्टि बड़ी पैनी होती है।'

'और वैसी ही कवि की उड़ान भी।'

हाँ, पर उड़ान तो तुम भी भरती होगी। मैं तुम्हारे सम्मुख हूँ इसी को लेकर क्या तुम वास्तविकता से दूर नहीं जा रही होगी ? यह तो स्वाभाविक देन है मनुष्य के लिये।'

पूनो को शायद तर्क में आनन्द आता है। वह शिक्षित रमणी है और जीवन की उथल-पुथल में सक्रिय भाग लेनेवाली।

रात के नौ बजने जा रहे थे। पूनो विवाद को आगे न बढ़ाकर वहीं जहाँ का तहाँ छोड़कर आगे बढ़ आई। कोरी बातों को ही लेकर क्यों उलझा जाय ? 'हाँ, कविता सुनाओ अब, भूमिका तो इतनी बाँध ली।'

मैंने कहा-'अब तो बातों से ही मन भर गया होगा, कविता का रस क्या मिलेगा ? फिर किसी दिन सुनाऊँगा।'

'जैसी आपकी इच्छा।'

और उस रात जब मैं घर पहुँचा, तो भावों का एक सागर मेरे हृदय में लहराकर अपनी सम्पूर्ण शक्ति लगाकर मुझे जैसे पीछे की ओर ढकेलता जा रहा था।

मैं सोते से जागकर अपनी समग्र चेतना एकत्रित कर विचारने बैठ गया कि पूनो से जो मेरी राह चलते ही घनिष्ठता हो गई है, वह किन्हीं क्षणों के बीच आकर भी अटल ही रहनी चाहिये। पुरुष और नारी का जो अटूट सम्बन्ध है, और जो प्रकृति के साथ ही अडिग और स्थिर होकर ज्यों-का-त्यों अब तक छाया की भाँति चला आ रहा है; ठीक वैसा ही साकार होकर मेरे जीवन में भी आ बसे। पूनो से मैं उसके 'प्रेम' के सिवा और चाहूँ भी तो क्या?

रात में देर तक जागते रहने पर भी मेरी आँख उषाकाल ही में खुल गई। नक्षत्र अब भी बुझते हुए-से टिमटिमा रहे थे और शरद्कालीन शीतल वायु एक कम्पन-सा लेकर बहती जा रही थी। भावुकता की एक हिलोर मेरे मन के एक कोने से उठकर दूसरे तक सरसराती हुई चली गई। मैं प्रकृति की उस नीरवता में भी नेत्र खोलकर न तो अनन्त तक फैले हुए आकाश को ही देर तक देख सका और न उन खिले हुए पुष्पों की ओर, जो मेरे आँगन की क्यारी में हँस रहे थे। नेत्र मूँद-

कर और दीवार का सहारा लेकर मैं पूनो की ही बात विचारता रहा। उसे विस्मरण न कर सका।

और पूनो का रूमाल और उस पर लिखी हुई मेरी कविता और उसे सुनने का पूनो का आग्रह और उसकी वह दृष्टि। मेरा मन मधुरता से भरा जा रहा था।

जब सबेरा हो गया और पक्षियों के कलरव के साथ जन-समुदाय का शोर-गुल सुन पड़ने लगा और उगते सूर्य की प्रथम किरणें मेरे ऊपर आकर पड़ने लगीं, तब मैं चारपाई से उठा और अभी अँगड़ाई लेकर खड़ा ही हो पाया था कि पूनो का नौकर आ गया बुलाने, कहा—'बीबी जी ने कहा है, आज सबेरे की चाय वहीं पियें आकर।'

मैंने स्वीकृति दे दी और फिर यंत्रवत् शीघ्रता से तैयार होकर उसके यहाँ जा पहुँचा।

आज मैंने विशेष कपड़े पहन रक्खे थे। हल्का शरबती रंग का 'सूट' था और लगभग वैसी ही टाई भी बाँधी थी। अपने घर की क्यारी में से कुछ ताजे फूल चुनकर उन्हें अपने रूमाल मे रखलिया था कि आज इस प्रभात वेला में पूनो को ये ही भेंट करूँगा। जैसे मेरे पुष्पों में रंग एकत्रित होकर आ समाया है और जैसी बहार पाकर वे खिल रहे हैं, ठीक वैसे ही क्या पूनो भी अपने यौवन के रंगीन पुष्पों मे नहीं खिलेगी? और मनो-हारिणी और मनोमुग्धकारी बनकर मेरे मन के संताप को नहीं हर सकेगी?

बुलाने की आवश्यकता मुझे नहीं पड़ी। सीढ़ियों पर खट-खट करते ही पूनो मुस्कराती हुई आ गई। हल्की धानी रंग की ओढ़नी पर बड़े-बड़े फूलोंवाली लाल रंग की सलवार पहने थी। दोनो हाथ मिलाकर एक कलात्मक चित्र-सा बनाती हुई बोली—'नमस्ते, आइये।' और उसके रतनारे नेत्र मुझे जैसे उसकी ओर खींचने लगे।

'नमस्ते' का उत्तर देकर उसके पीछे-पीछे मैं कमरे में चला गया।

आज वह विशेष रूप से मेरा सत्कार करने को उत्सुक थी। चाय के साथ कुछ और वस्तुएँ मेज पर रखकर वह भी मेरे सम्मुख आ बैठी, बोली—'पीजिये न!'

मैंने स्पष्ट देखा कि आग्रह की एक अपरिसीम मात्रा जो पूनो के कण्ठ में स्वभावतः ही भरी रहती है, मुझे अपनी बात सुना देने के लिये मजबूर कर देती है। मैं ऐसे क्षणों का विरोध बड़े संयम के साथ और अपने भीतर एकन्तर्क के तूफान को जन्म देने के बाद ही कर पाता हूँ। पूनो ऐसी ही युवती है।

मैं चाय पीने लगा। ताजे फूलों के दो गुलदस्ते उस छोटी-सी मेज़ के दो ओर रक्खे थे, जिनसे भीनी सुगन्ध निकल रही थी। मैं आत्म-तृप्त-सा जीवन के सुखद क्षणों का स्मरण करता हुआ यह विचारता जा रहा था कि ऐसे अवसर सदा ही आते रहें और पूनो मुझसे दूर होकर भी मेरे इतने निकट रह सके।

पूनो ने फिर कहा—'आज भी आपको कविता सुनानी पड़ेगी। माँ भी सुनना चाहती हैं। मुझसे कई बार कह चुकी हैं।'

मैंने कहा—'तो उन्हें तुमने बताया ही क्यों? मैं वैसा कवि नहीं हूँ। व्यर्थ ही मेरी हँसी कराओगी।'

'हँसना तो कोई बुरा नहीं होता? मैं चाहा करती हूँ कि कोई मुझ पर हँसता रहे।'

'सच! तुम जो चाहती हो, मैं समझ नहीं पाता, पूनो।'

'यह तो और भी अच्छा है। आप मुझे न समझें। सम्भव है, कोई बात जान लेने पर घृणा लगने लगे।'

चाय का प्याला खाली कर मैंने मेज पर रख दिया कि पूनो की माँ आ गई। बड़े प्रेम से मेरे निकट आकर बोलीं—'तुम्हीं तो हो कवि प्रसन्न? बड़ी प्रसन्नता हुई तुम्हें देखकर।'

मैंने गर्व की साँस ली और फिर दोनों हाथ जोड़कर बोला—'नमस्ते आपसे मिलकर मुझे भी बड़ी प्रसन्नता हुई।'

'सो तो होना ही चाहिये'। पूनो बोल पड़ी—'मेरी माँ ऐसी ही हैं, बड़ी सरल। जो कहती हूँ, चुपचाप मान लेती हैं।'

उन्होंने पूनो की ओर देखकर मुस्करा दिया, फिर कुर्सी पर बैठ गईं और थोड़ी देर बाद बोलीं—'हाँ, तो तुम्हारी कविता सुनने ही मैं आई हूँ। पूनो को इससे स्नेह है, और मैं उसकी माँ हूँ, इससे मुझे भी होना चाहिये।'

मैं सोच रहा था कि आज सुनाये बिना बचने का नहीं।

पूनो की बात को टाल भी जाऊँ, किन्तु उसकी माँ की बात टाल देना तो कठिन है। मैंने तब सुनाने का ही निश्चय कर गुन-गुनाना आरम्भ कर दिया। वास्तव में मैं कविता के मर्म को नहीं जान पाता हूँ कि वह हृदय के किस निभृत कोने में छिपी बैठी रहती है, जो तनिक-सा भी आधार पाकर ज्वालामुखी की भाँति भड़क उठती है। मेरा स्वभाव गुनगुनाने का है, और सभी लोग सहज ही अनुमान कर लेते हैं कि मैं कवि हूँ।

मैं सुनाने लगा और जब सुना चुका, तो वह मेरी पीठ पर हाथ फेरकर बड़े प्यार से बोली—'तुम अमर हो बेटा, चिरञ्जीव रहो। अपनी कविताओं को छपाते भी चलो। तुम वास्तव में प्रसन्न हो।'

और पूनो कह उठी—'देखा माँ, इतनी प्रशंसा करने पर भी तो यह उठकर आपके पैर नहीं छूते।'

वह वैसे ही आशीर्वाद देने लगीं—'तुम सुखी रहो जीवन-भर।' कहती वह अन्दर चली गईं।

उस दिन बादल घिरे थे, और वर्षा होने की आशङ्का पग-पग पर हो रही थी। फिर भी मैं घर में बैठा नहीं रह सका। पूनो से मिले कई दिन हो गये थे, और आज उसकी स्मृति जैसे साकार रूप में मेरे सम्मुख खड़ी होकर मुझे उसके निकट जाने की प्रेरणा दे रही थी। मैं अनुभव कर रहा था कि उसके बिना मैं शायद रह नहीं सकूँगा और मेरे इन

विचारों का साथ दिया वर्षा की बूँदों ने। जब मैं निर्जन सड़क पर जल्दी-जल्दी चलने लगा, तो वे पड़-पड़कर मेरे चारों ओर जैसे एक स्वर-लहरी-सी बुनकर चिल्लाने लगीं—'तुम पूनो के बिना नहीं रह सकते, तुम''''तुम उससे प्रेम करते हो।'

मेरे मन की भावनायें स्वयं तरङ्गित होकर और मुझे रोमांस की सरपट दौड़ लगाने के लिये तैयार करती हुई मुझसे प्रतिध्वनित होकर कहने लगीं—'ठीक ही तो है। तुम्हारे चारों ओर का वातावरण, यह ठण्डी सड़क, ये बिजली के खम्भे, उनके 'करेंट' से भरे हुए तार, ये वृक्ष और ऊँचे-ऊँचे मकान, सभी तो जानते हैं, तुम पूनो को चाहते हो—केवल पूनो को। तुम उसके बिना पागल हो जाओगे।'

और मुझे लगा कि कोई मेरे निकट आकर मेरे कान में यही सब बार-बार फूंक रहा है। जैसे किसी ने पीछे से मेरे कंधे का हल्का स्पर्श कर लिया है। मैं रुक गया, फिर पीछे मुड़कर देखा--कहीं कोई नहीं था। किसी की छाया भी नहीं। कोई गाड़ी जो स्टेशन के निकट आ गई थी, अपनी गड़गड़ाहट सुना रही थी और इन्जिन बार-बार सीटी फूँक रहा था। इस सबने मिलकर मुझे जैसे एक नये संसार में लाकर पटक दिया। मैं जाग्रत होते हुए भी अपने को स्वप्नावस्था में समझने लगा।

मैं फिर आगे बढ़ चला पूनो के घर की ओर। पीछे से घर-

घर करती एक मोटर अपना प्रकाश फैलाती हुई मुझे सचेत और सजग करती चली गई। मैं उसके नीचे आ नहीं गया, यह सम्भवत: ड्राइवर की कुशलता थी।

वर्षा की बूँदें अब वेग से गिरने लगी थीं और मैं ऊपर से नीचे तक भीग गया था। पेड़ के नीचे ठंड से सिकुड़ती हुई एक भिखारिणी वर्षा मे भीग रही थी और अपने निकट लेटे हुए दूसरे भिखारी की ओर बढ़ती जा रही थी। मैंने मन-ही-मन कहा—पूनो, यही तो उन्माद के क्षण हैं। इस वर्षा-बूँदी में भी मैं तुमसे मिलने का लोभ संवरण न कर सका। सब स्वाभाविक है, ऐसा ही होता है पूनो, ठीक ऐसा ही। तुम मुझे भीगा देखकर चकित न हो जाना। मैं स्वयं ही नहीं समझ पा रहा हूँ कि मुझे क्या हो गया है? मैं पागल हो गया हूँ पूनो, हाँ-हाँ, पागल।

उसके घर के निकट पहुंचकर मैंने देखा-खिड़की से बिजली का प्रकाश निकलकर सड़क पर पड़ रहा था। पूनो को जागती हुई जानकर मैंने दरवाजे पर हल्की-सी थाप दी और दूसरे ही क्षण पूनो अलसाई-सी मेरे सम्मुख खड़ी थी। मुझे नीचे से ऊपर तक एक ही दृष्टि में भरकर बोली—'आप तो सब भीग गये हैं, कहीं ठंड न लग जाये। आओ अंदर, दरवाजा बन्द कर दूं। हवा चल रही है।'

मैं ठीक यही चाहता था। पूनो—मुझसे क्या और क्यों का प्रश्न न करे और न आश्चर्य से मुझे देखकर ही रह जाय।

बिना व्यक्त किये वह जान ले कि मैंने यह सब उसी के लिये किया है। मुझे उससे स्नेह है।

मुझे ले जाकर उसने अपनी मां के सम्मुख खड़ा कर दिया, और बोली--'देखो मां, इनकी ओर तो देखो, वर्षा में भीगकर आये हैं।'

वह लेटी थीं, करवट लेकर मेरी ओर देखकर पूनो से बोलीं-'तो मुझे दिखाने क्या लाई है। दूसरे कपड़े क्यों नहीं निकालकर दे देती ? हवा में ठंड है। जा, जल्दी कर।'

मैं जिस समस्या को लेकर अब तक उलझ रहा था, वह और भी जटिल बनती जा रही थी ? पूनो और उसकी मां ! इनको मैं कैसे समझ सकूँ। जीवन का क्रम चलाने की इनकी यह कौन-सी नीति है ? पूनो उनकी जवान लड़की है और मैं उससे मिलने इस वर्षा में आया हूँ। तब भी न तो पूनो कुछ पूछ सकी और न वही। मुझे वह क्या समझ रही हैं ? आज मैं पूनो से इसकी विवेचना अवश्य करूँगा।

पूनो मुझे अपने कमरे में लाकर बोली—'आप तो जानते हैं, घर में पुरुषों में कोई नहीं है। केवल हम दो मां-बेटी ही हैं। तब हम लोगों के पास अपने कपड़े हैं, मरदाने तो हैं नहीं। आप हमारे कपड़े पहन सकेंगे ?'

मैं पूनो के मुख की ओर देखकर रह गया। वह अपनी बात कहकर भी गम्भीर थी। आज जीवन में पहली बार मैं ऐसी

परिस्थिति में आया था। मैं क्या एक औरत के कपड़े पहनूँ? हुश! इसीलिये क्या मैं आया था?

पूनो मुझे संकोच में पड़े देखकर और मेरे मन की बात का अनुभव करती हुई बोली—'और हानि ही क्या है? रात में देखेगा भी कौन?'

मैंने कहा—'कोई न देखे, तो क्या मैं पुरुष से स्त्री बन जाऊँ? ऐसी आवश्यकता ही क्या आ पड़ी है? मैं इन्हीं कपड़ों में वापस चला जाऊँगा।'

'क्या आप वापस लौट जाने की सोचकर आये हैं? इतनी घनघोर वर्षा में आप उतनी दूर लौटकर क्या करेंगे? आज रात यहीं रह जाइये न!' कहती हुई वह कुछ क्षण को रुकी, फिर बक्स को खोलकर कहने लगी—'देखिये, देखती हूँ, शायद कोई मरदानी धोती मिल जाय।'

मैं भीगे कपड़ों में वास्तव में काँप रहा था। पूनो मुझसे रुकने को कहकर और आज रात यहीं रह जाने की बात सुनाकर क्या कहना चाहती है? उसे क्या लोक-लज्जा का भी भय नहीं है? वह क्या इतनी दृढ़ है कि समाज के सामने खुलकर जो चाहे सो कर सके?

कुछ देर बाद धोती और कुर्ता पहनकर जब मैं फिर जाने को तत्पर हो गया, तो पूनो फिर बोली—'घर से यहाँ तक भीगते आये हो और यहाँ से घर तक फिर वैसे ही जाओगे। क्या सोच रक्खा है?'

मैं अब अपनी बात कहने से अपने को न रोक सका। उसकी ओर दृष्टि जमाते हुए बोला—'पूनो, मैं तुमसे प्रेम करता हूँ। मैं तुम्हारे बिना नहीं रह सकूँगा।'

पूनो वैसी ही स्थिर रही। केवल नेत्र उठाकर मेरे नेत्रों से मिला दिये, फिर धीरे से बोली—'मैं यही तो सोच रही थी कि आपने यह बात मुझसे अब तक क्यों नहीं कही ?'

'तुम क्या इस पर विश्वास नहीं करतीं ?'

'मैंने अविश्वास करने की बात तो कही नहीं। जब आप मुझसे प्रेम करते हैं और आप यह कह भी रहे हैं, तब तो मैं यह मानूँगी ही।'

'और तुम पूनो ? तुम मुझे नहीं चाहतीं ?'

'यह तो मैंने नहीं कहा कभी।'

उसके इस अव्यवहारिक विवाद से चाहते हुए भी मेरे मन में खीझ नहीं उठ सकी। मैं अब उन्माद की उस अवस्था में पहुँच गया था, जहाँ विवेक लुप्त हो जाता है। मेरे नेत्रों पर जैसे एक आवरण-सा पड़ता जा रहा था। मैंने लड़खड़ाते हुए कहा—'पू.......नो.....ो-ो।'

वह शायद मेरा मनोभाव समझ रही थी और दूसरे ही क्षण वह रोमान्टिक वातावरण को बदलने का प्रयत्न करती हुई बोली—'हाँ, बूँदें शायद रुक गई हैं। सम्भव है, तारे फिर निकल आये हों। अब आप मजे में जा सकेंगे।' कहकर उसने दरवाजा खोल दिया।

सचमुच ही वर्षा रुक गई थी। एक झटका खाकर मेरी दुश्चेष्टा को विलीन होते देर न लगी। मैंने कहा—'तो जा रहा हूँ पूनो, कपड़े कल भेजवा दूँगा।'

चलते-चलते मैंने देखा, वह वैसी ही दरवाजा पकड़े खड़ी मेरा जाना देख रही थी।

पूनो अपनी बातों की विचित्रता के साथ अपने रहने—सहने में भी विचित्र थी। कभी वह अपनी माँग में सिंदूर भर लेती। माथे पर सोहाग बिन्दी लगा लेती और कभी साध्वी बन जाती। न बालों में तेल डालती और न रगीन साड़ी पहनती। विधवा स्त्री की भाँति, जिसका वैभव लुट चुका है, वह सफ़ेद साड़ी पहने रहती। वह विवाहिता है अथवा अविवाहिता और उसका पति जीवित है अथवा नहीं, सो भी मैं नहीं जान सका, और न कभी जानने का प्रयास ही किया। वह अपनी माँ के साथ रहती है और धन का उपयोग खुले हाथों करती है, यही मैं जान सका केवल। वह कहाँ से आता है, यह जानने के लिये भी मैंने प्रयास नहीं किया।

फिर भी मैं उससे प्रेम करने लगा और उसे अपने हृदय में बसाये उसके निकट रहने का प्रयत्न करने लगा। मैं सोचता-क्या वह मेरी हो भी सकेगी? यदि वह विवाहिता हुई और उसका पति जीवित हुआ, तब क्या होगा? धीरे-धीरे ये विचार मेरा हृदय-मंथन करने लगे, और मैं एक प्रकार की

मानसिक चिन्ता और परेशानी के बीच रहने लगा, जिसे मैंने स्वयं ही आमन्त्रित किया था। मैं चाहने पर भी पूनो से इस सम्बन्ध में कुछ न पूछ सका।

भावावेश में जब मनुष्य का ज्ञान शून्य हो जाता है, तो वह भलाई-बुराई की ओर नहीं देख पाता। उसे तो वही सब करने में सुख और आनन्द मिलता है, जो उसके मन के अन्तर में एक तूफान मचाये रहता है। मैंने एक और कविता लिखी थी और उसे लेकर मैं एक सन्ध्या को पूनो के यहाँ जा पहुँचा। उस दिन मैं यही सोचकर गया था कि उसके बिना आग्रह किये ही मैं वह कविता सुनाऊँगा और फिर अपने मन की बात सहज ही कह सकने की भूमिका बाँध लूँगा। मुझे अपनी भावी सफलता पर स्वय गर्व होने लगा था।

पूनो मेरी कुछ प्रतीक्षा करने के बाद आई। आज उसके सर के बाल सूखे थे और मुख पर जैसे वैधव्य की वेदना साकार होकर उतर आई थी। सफेद साड़ी उसके सौंदर्य को और उज्ज्वल बना रही थी। मुझे उसका वह रूप, करुणा से ओत-प्रोत होते हुए भी मनोमुग्धकारी-सा लगा, और मैंने उसके दुख की अनुभूति को जैसे जान-बूझकर दूर ढकेलते हुए कहा–'पूनो, आज मैं एक नई कविता लिखकर लाया हूँ, सुनोगी ?'

'जैसी आपकी इच्छा।' उसके अन्तःकरण से जैसे यह वाक्य एक पीड़ा लेकर अपनी छटपटाहट मेरे सम्मुख बिखेर गया।

मैं फिर भी अपनी ही बात कहता रहा—'और आज एक विशेष बात भी कहनी है तुम से पूनो। मैं तुमसे अलग होकर नहीं रह सकूँगा। मैं तुम्हारे साथ विवाह करना चाहता हूँ।'

पूनो अवसाद से मुस्करा उठी। जैसे उसके निकट मैंने एक साधारणसी बात कही है, जिसे वह जानती थी। 'आश्चर्य' नाम की वस्तु तो उसके लिये विश्व में है ही नहीं।

वह गम्भीरता से बोली—'इसे भी मैं पहले ही से समझ रही थी कि आप एक-न-एक दिन यह प्रस्ताव अवश्य करेंगे।' फिर जैसे कहना न चाहते हुए भी किसी पीड़ा का अनुभव करती हुई बोली—'आपको दुख होगा सुनकर प्रसन्न बाबू। मै विवाहिता हूँ और मेरे पति अभी जीवित हैं। आज ही फौज के दफ्तर से सूचना मिली है कि वह जीवित ही पकड़ लिये गये है और युद्ध-बन्दी हैं। उनके जीवित रहते मै दूसरा विवाह कैसे करलूँ, आप ही बताइये? मैं नारी जो हूँ, अबला। आज से चार वर्ष पूर्व हमारा सम्बन्ध हुआ था और तीन वर्ष से वह फौज में हैं।'

'प्रसन्न बाबू' आज प्रथम बार सम्बोधित कर पूनो अपनी कहानी सुना गई। मेरे ऊपर जैसे मनों बोझ लद गया और मै क्षुब्धता और ग्लानि से दबा जाने लगा। अपने विचार मुझे स्वयं ही घृणित मालूम होने लगे। यह मैं क्या कह बैठा पूनो? तुमने मुझसे यह सब पहले ही क्यों न कह दिया? मैं इस पथ पर आगे बढता ही क्यों?

वह आगे बोली—'और इसी गाड़ी से हम लोग यहाँ से जा रही हैं। सामान बँध गया है। नौकर ताँगा लेने गया है। समय से आ गये आप, जो चलती बार भेंट हो गई। अब यहाँ आना क्या हो सकेगा ?' फिर कलाई में बँधी घड़ी की ओर देखकर बोली—'हाँ, तो अभी समय है थोड़ा-सा। आप कविता सुना दीजिये।'

मैंने कहा—'तुम परेशान हो पूनो, व्यथित भी। तुम्हें धैर्य बँधाने की ज़रूरत है। मेरी कविता से यह नहीं हो सकेगा। अनजान में जो अपराध हो गया है मुझसे, उसके लिये क्षमा कर दो।'

इसी बीच ताँगा आ गया और नौकर जब उस पर सामान रख चुका, तो पूनो से चलने के लिये कह गया। वह फिर भी नहीं उठी। मूर्तिवत् बैठी रही। तभी अन्दर से उसकी माँ आ गई। मुझे देखकर कण्ठ-भर कर बोलीं—'पूनो ने तो सब कुछ सुना दिया होगा। हम लोग जा रही हैं यहाँ से। तुम्हारी बड़ी याद आती रहेगी। तुम्हारी कविताएँ बड़ी पसन्द हैं।' फिर पूनो से बोलीं—'चलो बेटी, गाड़ी का समय हो गया है।'

पूनो उठ खड़ी हुई। जाते-जाते उसने मेरी ओर एक कार्ड बढ़ाते हुये कहा—'यह मेरा पता रहेगा। यदि आ सकना, तो मिलना न भूलना।'

और मैंने जेब से हरी किनारी वाला रूमाल निकाल कर कहा—'इसे अपने साथ लेती जाओ पूनो, तुम्हारी वस्तु

है। मैं इसे अपने पास रखकर अब क्या करूँगा ? तुम्हें भुला भी सकूँ जीवन में.........?'

पूनो ने हाथ बढ़ाकर रूमाल ले लिया और ताँगे में जा बैठी। मैं वहीं सड़क पर खड़ा देख रहा था। ताँगा दूर जाकर स्टेशन वाली सड़क की ओर मुड़ गया।

मैं मन ही मन कह उठा—'पूनो, तुम्हारी स्मृति क्या मेरे हृदय से निकल सकेगी कभी ?'

# बालू की दीवार

छोटे बच्चे के लिये स्वेटर बुन रही थी कौशल और सोच रही थी विश्व के सम्बन्ध में। आज सवेरे की डाक से उसका पत्र आया था। और सब बातों के साथ ही यह भी लिखा था उसने कि वह उसे देखने आना चाहता है। कई बार चलने के लिये स्टेशन तक आया और लौट गया। ऐसे ही सम्भव है, किसी दिन आ जाय, किन्तु कुछ निश्चित नहीं है।

कौशल ने पत्र को दो-तीन बार पढ़ा। मन फिर भी नहीं भरा। सहेज कर बक्स में रख आई। गृहस्थी के कार्य से निवृत्त होकर फिर पढ़ेगी। यह विश्व जितना गहरा है, वैसे ही पत्र भी लिखता है। लम्बे अक्षर मानों वायु के साथ उड़-कर एकत्रित हो गये हैं। और उनमें जो कुछ भरा है, उसे कैसे समझा जा सके? यों कौशल ने बहुत निकट से विश्व को परख लिया है, किन्तु कभी-कभी तो धोखा हो ही जाता है, और तब वह मन-ही-मन कह लेती है–'पुरुष जाति ही विचित्र है। जाने क्या-क्या सोचा करते हैं ये लोग?'

विश्व एक सम्बन्धी बनकर जिस दिन परिहास का नाता कौशल से जोड़ बैठा, तो उसने भी आपत्ति नहीं की। वह सब उसे कैसा लगा, यह कदाचित् वह आज भी नहीं बता सकती है।

किन्तु उसकी बातें सुनने को वह आज भी उतनी ही उत्सुक रहती है, जितनी पहले रही थी। अपने भावों को शब्दों में व्यक्त कर पाना कौशल के लिये कठिन है, परन्तु वह उसका पूरा अर्थ उतार कर अपने मन को तो समझा ही लेती है।

और विश्व''''विश्व अपनी कलम से सौदा करनेवाला एक बुद्धिजीवी है। अपनी राह में उगे काँटों से उलझकर चलना वह पसंद करता है। कौशल के व्यवहार से इधर वह इतना रुँधकर रह गया है कि सघन मेघों की भाँति वह उसके हृदय में हर समय घुला रहता है और उनमें रत वह अपने जीवन के प्रत्येक पल को जैसे उसी के साथ लिये चल रहा है। कौशल ने उसके बहाव में जो नवीन धारा फैला दी है, उससे वह चकित होकर भी विस्मृत सा जैसे उसी में डूब उतराकर रह जाना चाहता है। पुरुष और नारी के बीच जो स्वाभाविक आकर्षण का गहरा स्रोत बहा करता है, उसी की भूमिका बाँधकर एक दिन कौशल से उसने न जाने कितना क्या कहा था, और उस दिन वे दोनों बड़ी देर तक फिर मूक भाषा में ही जैसे हृदय के उतार-चढ़ाव को आँकते रहे थे।

संसार में जो कुछ शिव और सत्य है, जो चिरन्तन है और उसी अनादि काल से प्रवाहित होता आ रहा है, उसी सबमें विश्व आस्था रखता है।

कौशल की पतली उँगलियां सलाई पर चल रही थीं। जाड़े आ गये हैं। छोटे बच्चे के पास गरम कपड़े नहीं हैं।

बड़े बच्चे को पिछले वर्ष ही सूट सिलवा दिया था। वह भी अब चढ़ गया है। अपनी उसे चिन्ता नहीं। वह हैं सो लाख कहने पर भी अपने लिये कुछ नहीं बनवाते। अजीब स्वभाव है। और इन घरेलू बातों से हटकर उसका ध्यान समाज और देश की ओर दौड़ गया। चारों ओर क्रान्ति का जीवन करवटें ले रहा है, और उसके बीच फँसी नारी........?

तब तक आ गया रघुराज। उसे सुनाती हुई बोली कौशल–'विश्व का पत्र आया है। आने को लिखा है।'

'कब तक आयेगा ?'

'यही दो-चार दिन में।'

रघुराज कमरे में कपड़े उतारने चला गया। कौशल स्वेटर रखकर रसोई घर की ओर चली गई।

रघुराज सोचता रहा—यह विश्व कैसा है, जो व्यर्थ ही उसके परिवार से आ चिपका है ? कौशल के साथ उसकी जिस प्रकार की बातें हुआ करती हैं, उन्हें वह बहुत कुछ जानता है। दो-एक बार ऐसा भी हो चुका है कि गर्म बहस छिड़ चुकी है उन दोनों के बीच और तब कौशल ने विश्व का पक्ष लिया है। विश्व नारी-जाति के विषय में जो धारणाएँ बना चुका है, उन्हें सुनकर रघुराज हँसा करता है। उसने कई बार कहा है–'यह निरी थ्योरी है विश्व, कोरा आदर्शवाद। हमारे परिवार में भला यह सब कैसे चल सकता है ? मध्य वर्ग का गृहस्थ आज रोटी और पेट के लिये रात-दिन चिन्ता से

रसित रहता है। उसके रोमांस के चित्र उड़ गये हैं—बहुत पीछे। अब कदाचित् लौटाये नहीं जा सकते।'

किन्तु विश्व कहता—'नहीं दोस्त। कैसी मरी बातें करते हो? देश को सँभलने दो, समाज में नया जीवन आने दो, फिर देखो हम लोग कितने अह्लाद के बीच पनपते हैं?'

रघुराज ने कहा था—'यह सब कल्पना करके और स्वप्न देखकर तुमने जाना होगा।'

तभी आ गई थी कौशल। वातावरण ने करवट ले ली। बच्चों के सुधार से लेकर सिनेमा का उपयोग और युद्ध की बदली हुई राजनीतिक परिस्थिति पर विवाद चलने लगा था। आज की महँगाई खाये जा रही है। सफ़ेद पोश बाबू कर्ज से दबा जा रहा है। पूँजीवाद अब भी पनप रहा है। यह कौशल ऐसी है कि साधारण सी पढ़ी-लिखी होकर भी बातें करने में खूब तेज़ है। गृहस्थी की आँच में आधी झुलस चुकी है। दो बच्चों की माँ है। शरीर में रक्त की कमी है। नए फ़िल्म देखने, नई डिजाइनों की साड़ियाँ खरीदने और जेवरों की चर्चा करने का उसका शौक ही मर गया है।

रघुराज कपड़े उतारकर बाहर आ गया। विश्व के आने का संवाद अब भी उसे जैसे कोस रहा था।

कौशल रसोई घर से बाहर निकल आकर कहने लगी—'अभी तो खाने में देर है। तब तक कुछ खाकर पानी पी लो।'

उसने 'हाँ-न' कुछ नहीं किया, और गम्भीर बना बैठा रहा।

कौशल एक प्लेट में नाश्ते का सामान रख गई। एक गिलास पानी भी। फिर रसोई घर में चली गई।

रघुराज के भीतर जो कुछ घुमड़ रहा था, उसे वह बरसाये बिना चैन नहीं पा रहा था। पूछ बैठा—'और कुछ लिखा है विश्व ने, क्यों ?'

बोली कौशल—'बहुत कुछ, पर वह सब मेरे लिये है। तुम्हारे नौकर की प्रशंसा की है। सवेरे से लेकर शाम तक....।'

रघुराज जैसे और सुलग कर रह गया, फिर नहीं बोला। कौशल छोटे बच्चे को बोतल का दूध पिलाने लगी।

विश्व ने मकड़ो के जाले की भाँति जिस दिन अपनी बातें फैला दीं, तो कौशल उनमें अनायास अटक गई। वे सब गृहस्थी की लम्बी-चौड़ी कहानियाँ थीं, जिनमें नारी-अधिकार की चर्चा भरी थी। विश्व को स्मरण है—कौशल ने उन सबको सुन कर कहा था—'तुम इतना सब कहाँ से पा गये ? हमारी जाति आज कितनी उत्पीड़ित है, इसे तुम ठीक-ठीक समझ सकते हो ?'

वह उसकी ओर कुछ क्षण निहारता रहकर बोला—'ठीक तो है कौशल यह सब, पर तुम पुरुष को....।' फिर वह स्वयं चुप हो गया था।

आगे कहा कौशल ने—'तुमने मेरे मन की सारी बा

सहज ही जान लो हैं विश्व। जो कुछ मैं अब तक अपने में छिपाये रक्खे थी और जिनकी भाप से मैं मुरझाती जा रही थी, वे आज सभी धुआँ बनकर बाहर निकल पड़ी हैं।'

विश्व कहीं और उलझ रहा था। कौशल का अन्तिम शब्द ही उसके कानों में पड़ा। वह उसके शरीर पर दृष्टि डाल कर पूछ उठा—'तुम बीमार-सी लगती हो कौशल, अभी तो तुम""। सेहत की ओर ध्यान रखना होगा।'

'सो तो रख रही हूँ।' कौशल ने नीची दृष्टि कर कहा था। 'मुझे बीमार कौन कहता है?'

तब जैसे दार्शनिक बन कह उठा था विश्व—'तुम दूसरों को धोखा भले ही दे लो कौशल अपने को तो नहीं दे सकतीं?' तुम्हारे मुख पर गहरी छाया व्याप्त है, वह तुम्हारे हृदय की समस्त वेदना का प्रतिबिंब है। उसे तुम नहीं देख सकतीं, मान ही सकती हो। उसे तो हम लोग परख सकते हैं, कौशल। अपने प्रति स्वयं उपेक्षा करने में क्या रक्खा है? मन की आँधी को बाहर निकाल दो, नहीं तो वह तुम्हें झकझोर कर तुम्हारी मृत्यु बुला देगी।'

कौशल ने सर उठाकर उसके नेत्रों में झांक लिया एक बार।

विश्व कहता रहा—'और तुम अपनी मृत्यु क्यों चाहती हो? अभी से संसार से जी भर गया?'

'मृत्यु!'

'हाँ कौशल, उसकी कल्पना करना हमारे जीवन की सबसे बड़ी हार है। काँटों के बीच मार्ग....?'

कि आ गया था रघुराज बोला—'आज प्रवचन का विषय गम्भीर लग रहा है। अरे कौशल, तुम रोती हो, क्यों....?'

विश्व ने उसकी ओर देखा। सचमुच ही कौशल के नेत्र डबडबाये थे। वह उन्हें पोंछकर वहाँ से उठ जाना चाहती थी। विश्व मूक था। परिस्थिति क्या गम्भीर हो गई है? वह सोचता रहा।

रघुराज आराम कुर्सी का सहारा लेते हुए बोला—'एक बात जानते हो विश्व? थोथी बातों से हम नारी-हृदय की ममता को भले ही जीत लें, उसे अपना नहीं सकते।'

विश्व अप्रतिभ-सा रघुराज के मुख की ओर देखता रहा। उसके शब्द जैसे चारो ओर घुमड़ते रहे। बोला वह—'तुम क्या कह गये रघुराज? नारी को अपनाना और फिर कौशल को....हँसी आती है दोस्त। पर तुम भी क्या करो?'

कौशल वहाँ नहीं थी। अब आँखें धोकर आ गई।

रघुराज कहने लगा—'विश्व, कभी-कभी तो सोचता हूँ कि संसार से विरक्त हो जाऊँ। कहीं तीर्थ में कुटी बनाकर रहने लगूँ। दुनिया रहने लायक नहीं रही है।'

कौशल अब स्वस्थ थी। बोल पड़ी—'और हम लोग कह जायँगे?'

'तुम लोग ?' रघुराज ने दोहराया—'क्यों, विश्व है न ? तुम्हारा भी तो अनुराग इनकी ओर बढ़ रहा है। तुम्हारी गृहस्थी में मेरे स्थान पर यह आ टिकेंगे। नारी को तो पुरुष का सहारा चाहिये बस, जो उसके पेट के लिये सारे दिन कोल्हू के बैल की तरह जुता रहे। और मुझे तो विश्वास है विश्व तुम्हें मुझसे अधिक आराम देगा। मेरे लिये तुम पुरानी हो, और उसके लिये बिल्कुल नई।'

विश्व से चुप नहीं रहा गया। बोला—'ऐसे ही विचार बनाकर तो दुनिया से संन्यास में अधिक सुख दिखाई पड़ता है। संन्यासी बन सकोगे रघुराज, तप करना पड़ता है उसमें।'

कौशल को हँसी आ गई। कहते-कहते रह गई—'मुझसे तो कहते हैं कि तुम्हारे बिना………।'

विश्व कहने लगा—'रहने भी दो। ये बातें सबके सामने नहीं की जातीं।'

कौशल दूसरी बात कहने लगी—'तो विश्व तुम्हें आराम रहा। बसी-बसाई गृहस्थी मिल गई। अदालत भी नहीं जाना पड़ा।'

रघुराज अपनी बात की पुष्टि करता हुआ बोला—'ले जाओ विश्व, श्रीमती कौशलदेवी और उनके बच्चों को। मुझे इस जन्जाल से छुटकारा मिले।'

विश्व के हृदय में अभी रघुराज की सारी बातें घुमड़ रही थीं, बोला कौशल से—'और याद है मेरे-तुम्हारे अनुराग की

बातें भी मेरे दोस्त जानते हैं। मन में सभी कुछ भरे हैं। ऊपर से चिकना घड़ा बने रहना चाहते हैं।'

कौशल ने 'हूँ' कर दिया।

रघुराज कुर्सी छोड़कर खड़ा होता बोला—'तुम्हें तो विश्व पहले से जानता है। मेरे परिवार में आग मत लगा देना।'

विश्व आगे बात नहीं बढ़ाना चाहता था, फिर भी कह बैठा—'आग तो लगेगी ही रघुराज। हम तुम क्या, कोई भी उसे नहीं रोक सकता।' फिर कौशल से पूछ बैठा—'क्यों, गलत तो नहीं कहा ?'

कौशल सिमटी रही।

फिर आने को कहकर मुस्कराता हुआ वह दरवाज़ा पार कर गया।

और तीन दिन बाद जब वह पहुँचा था तो रघुराज पड़ा खर्राटे भर रहा था। कौशल दोनों बच्चों को सुलाकर कोई 'नावेल' पढ़ने की तैयारी कर रही थी।

आते ही पूछा उसने—'क्यों कौशल, दोस्त साहब अभी से सो गये ?'

'और क्या ?' उसने कहा—'कभी-कभी तो दफ्तर से लौट कर ही सो जाते हैं। फिर उठकर खाना खाना भी दुश्वार हो जाता है।'

विश्व पारिवारिक चर्चा को ही पकड़कर आगे बढ़ाना चाहता

था। नारी यदि इस प्रकार के जीवन से विद्रोह कर बैठे, तो आश्चर्य भी क्या है? मन में स्वस्थता भी नहीं है जैसे। सिनेमा में नए-नए फ़िल्म आते हैं। कौशल उन्हें देखने कदाचित् ही जा पाती होगी। पत्रों में देश के समाचार उथल-पुथल लेकर आते हैं। वह सब भी उसे क्या मालूम? किन्तु उसने यह सब कुछ नहीं कहा। अपने भीतर छिपाये रहा। बोला—'एक बात पूछूँ कौशल? तुम मुझसे अनुराग रखती हो?'

कौशल इस प्रश्न के उत्तर के लिये तैयार नहीं थी। संकुचित होकर रह गई।

आगे कहा विश्व ने—'क्यों कौशल, यह महाशय सोचते हैं कि मैं कहीं तुम्हें लेकर किसी दिन चल न दूँ, या फिर····?'

'या फिर·········?'

'हाँ कौशल, या फिर नैतिक पतन की बात। बड़े पुराने विचार हैं। स्त्री को मिट्टी का घड़ा समझ रक्खा है।'

रघुराज ने एक करवट ली, फिर दूसरी ओर मुँह करके सो गया।

पूछा कौशल ने—'जगा दूँ?'

'नहीं-नहीं', विश्व बोला-'सोने दो न? मेरी बात का उत्तर नहीं दिया। डरती हो क्या?'

'हाँ', कौशल बोली। 'पर तुमसे नहीं अपने से।'

विश्व खुलकर हँस पड़ना चाहता था पर रह गया। कहीं बच्चे जाग गये तो? मुस्करा कर बोला—'अपनी दुर्बलता से

सदा डरना होता है। कौशल, जीवन की सबसे बड़ी पराजय तो वही है।'

कौशल सुनकर मौन रह गई। उपन्यास के पृष्ठ लौटती रही। जी में आया उत्तर दे दे कुछ, फिर बोली नहीं।

विश्व कहता रहा—'और इन उपन्यासों में तुम्हें क्या मिलेगा कौशल? वही हार, दुर्बलता। पग-पग पर मानव हार-जीत के खेल में व्यस्त है। दाँव लगाना पड़ता है, बाजी आये चाहे न आये। क्या पढ़ने जा रही थीं?'

'शरत्चन्द्र का 'चरित्र-हीन', कह दिया कौशल ने।

'तब तुम भी कुछ बननेवाली हो, क्यों?'

'मैं समझी नहीं आपकी बात?' कौशल ने पूछ लिया।

'वह सब इसे पढ़कर जान लोगी। पूरा शास्त्र भरा है।'

'पर हमें उस सबको सीखने का अवसर ही कब मिलता है? गृहस्थी जो चिपकी है'? कौशल ने कहा।

'ठीक है,' कहा विश्व ने—'सभी तो दूसरों पर विश्वास नहीं कर सकते।' फिर रघुराज की ओर संकेत कर कहता रहा-'इन्हीं को ले लो न? मेरे-तुम्हारे प्रेम की धूल इनके हृदय पर बैठ गई है। और सुनो, ध्यान आ गया। क्या मैं तुमसे प्रेम करता हूँ कौशल?'

उसने कह दिया—'इसका उत्तर तो अपने से पूछो विश्व।'

'पर मैं तो तुम्हारे मन की गहराई में उतरना चाहता हूँ।'

'तो मुझे डूबते को तिनके का सहारा बनाना चाहते हो?'

विश्व कुछ सोच में पड़ गया। आगे बात बढ़ाने का मन नहीं हुआ।

बोली कौशल-'जाड़े आ गये हैं। सर्दी नहीं लगती तुम्हें? यों ही रातों में फिरा करते हो?'

विश्व उत्तर में 'हूँ' करके रह गया केवल। वह कहीं दूर भटक रहा था।

फिर एकाएक बोल उठा—'रघुराज कहता था कि''''। जाने दो कौशल। रात बढ़ रही है। तुम पढ़ो मैं जाऊँगा।' कह कर वह दरवाजा खोलकर बाहर आ गया।

उस अँधेरे में भी कौशल खड़ी उसे जाते हुये देखती रही। विश्व के विचारों की अस्थिरता उसका हृदय मंथन किये डाल रही थी।

विश्व फिर बाहर चला गया था। कई महीनों बाद कौशल को पत्र डाला था कि वह आ रहा है, पर आ जाय तभी है।

एक सप्ताह बीत गया, वह नहीं आया। कौशल दिन की और फिर रात की गाड़ियाँ देखते-देखते थक गई। पूछा रघुराज ने—'आया नहीं विश्व?'

वह छोटे बच्चे का स्वेटर सलाई पर से उतार रही थी, उसी में व्यस्त रही। उत्तर नहीं दिया कुछ।

आगे कहने लगा रघुराज—'मैं तो उसे जानता हूँ कौशल। तुम नाहक बुरा मान जाती हो। वह रंगीन तितलियों के बीच

रहना पसन्द करता है, और तुम्हारी चमक अब जाती रही है। गृहस्थी सारी सुन्दरता पी जाती है।'

कौशल ने दृष्टि भरकर रघुराज को देखा, फिर उठकर कमरे में चली गई। मेज पर स्वेटर को वैसा ही डालकर कुर्सी में समा गई। सर घुटनों के बीच छिपा लिया। रुलाई आ रही थी।

रघुराज उसका इस प्रकार जाना समझ गया था। उसके कन्धे पर आकर हाथ रखकर बोला—'रोने लगती हो बात-बात में कौशल, यह तो ठीक नहीं? विश्व आता होगा, जरूर आयेगा। कहो मैं उसे तार दे दूँ?'

कौशल का कंठ आंसुओं से गीला था बोली—'तुम यही सब कहकर तो मुझे और भी दुखी करते हो। विश्व मेरा है ही कौन?'

रघुराज उसके हृदय की कठोरता को और तरल बनाकर मुस्कराने का प्रयत्न करता हुआ कहने लगा—'इस सबको छोड़ो कौशल। और सुनो, तुमसे एक बात और भी तो कहनी है। यहाँ से तबादला हो गया है मेरा।'

कौशल ने इस सबको सुनकर किसी प्रकार का उत्साह नहीं प्रकट किया। अपने आँसुओं को पोंछती रही बैठी। उसके जीवन में जो अभिनय हो रहा है, उसका पटाक्षेप क्या उसी को लेकर होगा? उसका सामाजिक उत्तरदायित्व और""?

रघुराज कहने लगा—'चलो बाहर ऐसी घटनाएँ तो हुआ

ही करती हैं। जीवन का साथी कहीं मन का मिल सके तो....?'

'तो उससे बढ़कर और क्या मिल सकता है ?' विश्व ने दरवाजे पर खड़े होकर कहा। फिर आगे बढ़कर बोला-'ओहो! लगता है अनबन हो गई है तुम दोनों में। कौन किसे मनाता रहा है ?'

कौशल ने भरी आँखों से उसकी ओर निहारा, बोली नहीं कुछ। रघुराज कहने लगा—'तुम आ गए विश्व ? तुमसे कहा था एक दिन याद है ? मेरे जीवन में आग न लगा देना। सो माने नहीं तुम ? पत्र डाल दिया और आए इतने दिन बाद, जब कौशल को रुला लिया। बड़े निठुर हो। मैं तो समझा था प्रेमी हृदय कोमल होता है।'

विश्व रघुराज के इस व्यंग्य से आहत होकर भी मुस्करा-कर बोला—'अब तो लगता है बोलने की ट्रेनिंग मिल गई है, क्यों रघुराज ? कौशल को क्यों दुःखी करते हो ?'

रघुराज फीकी मुस्कराहट के बीच कह गया—'तभी तो इस दुख को दूर करने के लिये तुमसे नाता जोड़ा है। विश्व, कह तो दिया है। ले न जाओ सबको ?' कहकर वह उठ आया बाहर।

कौशल के निकट जाकर बोला विश्व-'रोती हो कौशल ? बड़ी पागल हो। अभी अल्हड़ता गई नहीं है क्यों ?'

कौशल जो कुछ कहना चाहती थी, निरंतर सोचते र.

कर जो भन्डार उसके सामने खोल देना चाहती थी, वह सब न जाने कहाँ खो बैठी ? कह दिया धीरे से—'बड़ा रास्ता दिखलाया ?'

बोला विश्व—'अपनी उलझनों को दूर कर सकूँ तभी न ? सबेरे का स्टेशन आया हूँ। दो बार शहर घूम चुका और यही निश्चय करते हो गया कि आऊँ अथवा वापस लौट जाऊँ।'

बाहर से कह उठा रघुराज—'मिल लेना जी भरकर। मैं जाता हूँ विश्व के लिये कुछ ले आऊँ।'

कौशल कुछ कहना चाहकर भी नहीं कह सकी।

विश्व कहता रहा—'रघुराज भी क्या है कौशल ? व्यर्थ की बातों को अपने मन में भरे रहता है। आज हम जिस स्वस्थ-जीवन की कल्पना करते हैं, उसकी छाया मिलते ही मन वहाँ कुछ क्षण को टिक जाना चाहता है केवल। तुम अपनी गृहस्थी को सदैव एक उज्ज्वल तारिका के प्रकाश से झिलमिल करती रहो।'

बोली कौशल—'यही सब तो मैं भी सोचा करती हूँ विश्व, तुम·····।'

विश्व मुस्कराकर रह गया।